ओ३म्

यज्ञोपवीत-मीमांसा

卐

लेखक :—

पं० श्रीविश्वनाथ शास्त्री
(Research Scholar.)

प्रकाशक :—

वैदिक साहित्य पुस्तकालय,

२३, अर्फानगंज रोड,

खिद्रिपुर, कलकत्ता।

मावृत्ति ३०००।

॥ओ३म्॥

यज्ञोपवीत-मीमांसा

लेखकः—

पुरातत्वान्वेषक—
पं० श्री विश्वनाथ शास्त्री, (वेद-व्याकरणतीर्थादि)
भू० पू० प्रधानाध्यापक, श्रीसत्यनारायण संस्कृत
विद्यालय, चिरकुण्डा. (मानभूम)।

प्रकाशक :—
वैदिक साहित्य पुस्तकालय,
२३. अर्फनगंज रोड, खिदिरपुर, कलकत्ता।

संवत् १९९५ वि० पौष कृष्णैकादशी } 17-12

प्रकाशकके निवेदन

यज्ञोपवीत सम्बन्धी कोई भी प्रामाणिक और पूर्ण ग्रन्थ अभी तक नहीं प्रकाश होनेके कारण, इस विषयके अनेक जटिल प्रश्न हृदयमें उठा करते थे, और हृदयमें ही विलीन हो जाते थे। इस खटकन को सर्वथा दूर करनेके लिये श्रद्धेय पं० विश्वनाथजी शास्त्रीसे अनुरोध किया गया। उक्त आदरणीय विद्वान्ने इस अनुरोधको स्वीकार कर यह ग्रन्थ हमें कृपया लिखकर छपानेको दिया। इस ग्रन्थके लिखने और सामग्रीके जुटानेमें शास्त्रीजीने जो परिश्रम किया है, वह अकथनीय है। यह कार्य वास्तवमें इन्हीं से सम्भव है। मैं तो शास्त्रीजीका इस परिश्रमके लिये हृदयसे अभिनन्दन करता हूं।

सुधी समाज भी इसे अपनाकर मेरे साथ ही लेखकके परिश्रमको सार्थक करनेमें मेरी सहायता करेंगे। इस ग्रन्थको सुन्दर बनानेका भरसक पूर्ण यत्न किया गया है। जल्दीके कारण सम्भव है, कुछ त्रुटियां रह गयी हों, उसे सदाशय पाठक

क्षमाकर दयापूर्वक यदि विद्वान् लेखकको या हमें सूचित करेंगे, तो बड़ा उपकार होगा।

मैंने संकल्प किया है कि इसी तरहके और भी आवश्यक विषयोंपर उच्च साहित्य विद्वानों द्वारा प्रस्तुत कराकर पाठकों की सेवामें सस्तेसे सस्ते दामोंपर अर्पण करूं, किन्तु यह कार्य तभी सम्भव हैं, जब पढ़नेवाली जनता भी हमें साथ दे, और मेरे पुस्तकालयसे ही सभी तरहके ग्रन्थोंको खरीदकर मेरे उत्साहको बढ़ावें। ॥*॥इति॥*॥

वैदिक साहित्य पुस्तकालय
२३, अर्फनगञ्ज रोड,
खिदिरपुर कलकत्ता।

आप सबोंका :—
सभापतिराय
प्रकाशक
१०-१२-३८

श्रद्धेय, विद्वद्वरेण्य, महामहोपाध्याय, प्रोफेसर पं० श्री सकलनारायण जी शर्मा, (कलकत्ता यूनिवर्सिटीके लेक्चरर)

की

अमूल्य सम्मति

मैंने "यज्ञोपवीत-मीमांसा" पढ़ी। ग्रन्थकारने इसके लिखने में बड़ा परिश्रम किया है। यज्ञोपवीतके सम्बन्धमें वेद, गृह्य-सूत्र, तथा स्मृतियोंने जो कुछ कहा है, इन्होंने इनका पूरा परिशीलन किया है। हमें यह लिखते बड़ा हर्ष होता है कि ग्रन्थकारने कहीं पक्षपात नहीं किया। यह पुस्तक आर्यसमाजी, सनातनी, तथा धर्म पुरातत्व प्रेमी, सबोंके कामकी है। इससे अनेक पुरानी बातोंका पता लगता है। हमें दो बातें बराबर खटकती रहती हैं, वे हैं मेखला और यज्ञोपवीत धारणका प्रधान मन्त्र। पहलेके सम्बन्धमें कुछ निर्णय हो जाता है, पर दूसरा सन्दिग्ध अवस्थामें रह जाता है, कि वह मन्त्र कहांका है। शूद्रोंके सम्बन्धमें ग्रन्थकारने इसमें जो मत प्रकटित किया है वह माननीय है। आशा है कि यह पुस्तक विद्वन्मण्डलीमें बड़ाही आदर पावेगी। यज्ञोपवीतके तीन सूत्रोंपर पुस्तक प्रणेताने जो कल्पना की है वह बड़े महत्वकी है। इसमें सन्देह नहीं कि **पुस्तक अपने ढङ्गकी अद्वितीय है।**

(ह०) सकलनारायण शर्मा (महामहोपाध्याय)

सम्माननीय, सर्व प्रसिद्ध, श्रीमान् पं० अयोध्या-प्रसाद जी, वैदिक रिसर्चस्कालर, तथा विश्व-धर्म सम्मेलन अमेरिकाके लब्ध प्रतिष्ठावान्, एकमात्र आर्य-प्रतिनिधि,

की

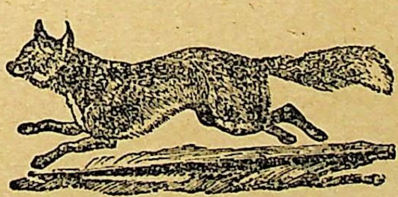
अमूल्य सम्मति

"यज्ञोपवीत-मीमांसा" नामक पुस्तकका सरसरी तौर पर अवलोकन करनेका अवसर प्राप्त हुआ। इसके लेखक पं० विश्वनाथ जी शास्त्री महोदयने यज्ञोपवीत धारण विषयक बहुतसे उपयोगी शास्त्रीय प्रमाणोंको अति ही परिश्रमपूर्वक संग्रह किया है, और इससे सम्बन्ध रखने वाले अन्यान्य विषयों पर भी उत्तम प्रकाश डाला है। विद्वानोंके लिये कतिपय विचार करने योग्य सामग्रियोंका भी इसमें उल्लेख किया गया है। पुस्तक खोजपूर्ण है, तथा आशा है कि यज्ञोपवीत विषयपर शंकाओंके निवारण करने तथा इसकी आवश्यकतापर प्रकाश डालनेमें उपयोगी सिद्ध होगी।

(ह०) अयोध्या प्रसाद

१४।१२३८

विषय-सूची



उद्बोधन

सम्प्रति भारतमें प्राचीन कर्त्तव्य, चलन, विचार, तथा आचारपर प्रायः सर्वत्र असन्तोष फैल चुका है। इसका कारण है वर्त्तमान शिक्षा पद्धति। इस विषैले गैसने आजतक भारतवर्षको बहुत तरहसे नष्ट कर दिया है। यों तो भारतवर्ष बहुत दिनोंसे विदेशी और अन्य धर्मावलम्बियोंसे संसर्गित था। शासन भी बहुत दिनों तक अन्य धर्मियोंके हाथ से हो चुका था, परन्तु उन सभी पुराने समयोंमें भारतीयोंको अपनी सभ्यता, धर्म और आचारपर गर्व, विश्वास, श्रद्धा और दृढ़ता थी, पर अभीके शासन और शिक्षामें यह नहीं रहा। आज अनेक अंशोंमें भारतीय अन्य मुखापेक्षित हैं। इतना होनेपर भी यह एक सौभाग्यका विषय है कि अब जब पाश्चात्य विद्वान् ही भारतीय पुरातत्व और प्राचीन पद्धतियोंपर बुद्धि लगा रहे हैं, तब उस क्रियाका पुनः प्रतिरूप और अपनापनका गर्व अब यहांवालोंको भी होता जा रहा है। आवश्यकता है स्थाईत्व को, इसके लिये एक दल यद्यपि कृतसंकल्प था, किन्तु, दुःख है, इसका वर्त्तमान सञ्चालन दूसरे सांचेमें ढल चुका है। आज

इसने अपने रूपोंमें अप्रत्याशित परिवर्त्तन कर दिया है। यहांके ब्राह्मण वास्तवमें हिन्दू जातिको कर्त्तव्य ज्ञानकी ओर प्रेरित करनेमें धार्मिक कर्त्तव्य समझते थे, परन्तु आज इन विदेशियों के युगमें इनका भी काफी मात्रामें ह्रास हो गया। यद्यपि कहने को आज ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, तथा शूद्र सब हैं, एवं संस्कार भी सब वही और धर्म विचार भी वही हैं, लेकिन हैं, वास्तविकताके सब विरुद्ध, अर्थात् अन्तःसारशून्य। काठका घोड़ा घर में रहनेपर भी बेकाम है, और काठका तलवार घूमाना जाननेपर भी जिस तरह नाकामयाब हैं; उसी तरह आज मेरी पद्धतियां हो रही हैं। इन सब बातोंके बिना सुधार हुए भारतकी दशा नहीं उठ सकेगी। इनके संस्कार करनेपर अवश्य जल्दीसे सुधार सभी चीजोंमें आजायेंगे। संस्कार ही एक वस्तु ऐसी है जिससे धेलेका लोहा भी अच्छी घड़ियोंमें लगकर बहुमूल्य हो जाता हैं। फिर मानवोंका संस्कार तो क्या नहीं कर दिखा सकता ?

संस्कारका अर्थ है "आत्मामें अनुभवसे उत्पन्न स्मृतिको उद्बुद्ध करने वाला।" कुछ आचार्यगण इसे "अन्तःकरण रूप उपाधिसे भूषित चेतन या अन्तःकरणका धर्म विशेष" मानते हैं।" हम देखते हैं कि वैद्य लोग भयानकसे भयानक विषका संस्कार कर अमृतसम औषधि बना देते हैं। जङ्गली हिंसक सिंह भी संस्कार करनेसे बकरीके साथ एक कटोरामें पानी पी लेता है। किसी भी बिखरे बगीचोंको माली संस्कार कर

सुन्दर मनोहर बना डालता है। हम प्रति दिन अपने कपड़े और अन्य साधनोंका संस्कार कर सुन्दर बनाते रहते हैं। इस तरह संस्कारकी चाह तो अवश्य प्राणीमें होती है, और इस चाहका फल सदा अच्छा ही हुआ करता है। संस्कारकी थोड़ी भी क्रिया निष्फल नहीं जा सकती, अतएव यद्यपि आज के नाममात्र संस्कार हमें बदल कर पूर्ण मात्रामें करने हैं, फिर भी कहना ही होगा कि आज भी यदि हिन्दुत्व कुछ शेष है तो उसी नाममात्रके ही संस्कारके फलसे। ओह ? अगर हममें आज पूर्ण विधियां प्रचलित हों और हम इनकी आवश्यकता अनुभव करते हुए, इन कामोंके लिए श्रद्धावान् हो जायं तो कितना बड़ा व्यक्तित्व मेरा होगा ?

+ + +

यहां पर एक विषय और भी याद करनेके हैं। भारतमें जो कुछ अभी भी आर्य धर्मकी उज्वल रूपरेखा और संस्कारके नमूने रह गये हैं वे इस देशकी महिलाओंके अकथ कष्ट सहिष्णुता और भावुकताके ही कारण। उनमें प्राचीन-प्रेम स्वाभाविक ही होता है। उनकी भावनामें एक गुरूत्व और लय है, जिसे रह रह कर बदलने वाले पुरुष मति अति शीघ्र नहीं बदल पाता। यही कारण है कि सैकड़ों दस्युदलोंके प्रभावमें भी वह संस्कृति भारतसे आमूल नष्ट न होने पायी, मुसलमान कालका वह हिन्दू धर्मके लिये रोमाञ्चकर संकटका काल भी कट गया, और हिन्दू धर्मका संस्कार बना रहा। आज भी इस

देशमें आये दिन इसाई और अंग्रेजी प्रवाहमें बहे बाबुओंके घर किसी भी शुभ अवसर पर वृद्धा और नवयुवकोंके बीच कलह होते ही रहते हैं। स्त्रियां बहुत सी नये युगके फैसनको पसन्द न करतीं, उनका निश्चय प्रयास रहता है कि मेरे घर पुराने भी रस्म तथा ढङ्ग पाले जांय, किन्तु बाबू समाज उसे पुरानी चाल, कह छोड़ता है। अवश्य इस संघर्षमें महिलाओंको झिड़कियां, अपमान और परिहास भी सहने पड़ते हैं, फिर भी वह रहती है सदा अपने निश्चय पर अटल। इन कारणोंकी कहीं कहीं तो शोचनीय दशा हो गई है। इसमें कितने घर बिगड़ भी गये हैं, और कितने बने भी हैं। अधिकांश स्थानोंमें तो इन्हीं देवियोंका विजय होता है, और प्रायः उत्साही बाबूको कहते सुना गया हैं कि "औरतोंके झमेलेमें तो मेरी बुद्धि काम ही नहीं करती।"

यह ठीक है कि स्त्रियोंके इस विषयकी अनेक कट्टरतायें वास्तवमें मेरी भी सहानुभूतिको अपनानेमें सदा असमर्थ रही है। ऐसी बातें सुधारपर आवें इसे मैं भी समझता और चाहता हूं, परन्तु इसमें बहुतसे जो लाभदायक सिद्ध होते हैं, उनके लिये समाज सदा उनका कृतज्ञ रहेगा, एवं बहुत बड़ी प्रसन्नता के साथ श्रद्धाञ्जलि अर्पण करेगा।

× × ×

हिन्दू धर्म संसारके समस्त धर्मों से अधिक गम्भीर और संस्कारित है। संसारके अन्य धर्मोंकी दीक्षा मनुष्यके ज्ञान-वृद्धि

के साथ साथ होती हैं, किन्तु हिन्दू धर्म ऐसा नहीं, इस धर्ममें मनुष्यके पैदा होनेका वीज ही हिन्दू धर्मी पैदा होनेकेलिये बोया जाता है। उसी समयसे फिर बार बार संस्कार कर तीक्ष्ण बनानेके लिये भिन्न भिन्न १६ संस्कार किये जाते हैं। संस्कार यह एक प्रकारकी विधि हैं। मनके संशोधक या सन्तोषक और धर्मका विशिष्ट चिह्न होनेके कारण इसकी बहुत बड़ी आवश्यकता हिदू-धर्मी समाजको है।

प्रत्येक समाजको आचारकी आवश्यकता सदा रहती ही है; प्रत्येक समाज अपनेको अन्य समाजवालोंसे कुछ भेद अवश्य अपने श्रेष्ठत्व या चिह्नके लिये रखता है, अतएव यहां यह जान लेना चाहिये कि हिन्दुत्व निदर्शक हमारे १६ संस्कारोंमें भी कई एक संस्कार केवल मात्र आर्य (हिन्दु) त्व बोधकका ही गौरव रखते हैं, परन्तु खेद है कि हमारे अधिकांश संस्कारोंको इस समय विशेष कर लौकिक व्यवहारोंने धर दबाया है। हमें इस समय संस्कारोंको शुद्ध करना चाहिये। संस्कारोंमें प्रधानतया गांभीर्य, धर्म भावना, शास्त्र विश्वास, और पवित्रताकी बुद्धि चाहिये, तभी संस्कारके प्रयोग जिसपर किये जायंगे उन बच्चे और बच्चियोंमें गांभीर्य्य, धर्मभावना, शास्त्र विश्वास और पवित्रता आयगी। कारण है पृथ्वीका ही जल आकाशसे बरसता है। संस्कार एक रस्म और नाटकके समान है, यह कल्पना अतिशय घृणित और अनिष्टकर हैं। इसके स्थान पर आस्तिक बुद्धि रखने पर ही, इसके अस्तित्व

को समझनेमें सरलता होती है। कल्पनासे जो वस्तु अधिक क्लिष्टकर है, वही सदाशयसे उतना ही सरल होता है। इन संस्कारोंमें उपनयन, विवाह, और अन्त्येष्टि हिन्दुत्व दर्शक हैं। हिन्दुओंके सभी संस्कार वेद मन्त्रोंसे ही करने चाहिये। इसके लिये सभीको पूर्ण स्वतन्त्रता रहनी चाहिये, कारण है कि वेद मन्त्र पढ़नेका अधिकार मनुष्य मात्रको है। नाना धर्म, वर्ण, शृङ्खला, तथा मतमतान्तरोंके पूर्व जागतिक सम्पत्ति होने के कारण वेद पर सबका समान अधिकार है। इस हेतु यह निश्चयपूर्वक स्वीकार करना आवश्यक कि सम्पूर्ण हिन्दू मात्रको उदार और पवित्र भावना द्वारा संस्कारके समय वेद मन्त्रोंका उपयोग निःशङ्क होकर करना ही चाहिये।

\+ + +

गर्मीके महीनोंमें सन्ध्यासमय किसी दिन मित्रोंसे बातें कर रहा था, बातों ही बातोंमें यज्ञोपवीत के विषयकी बातें निकल पड़ी, यज्ञोपवीतके ऊपर अनेक प्रश्न भी दनादन आ खड़े हुए, मैं जितना ही प्रयास उत्तर देकर निपटानेका करता, प्रश्न भी उतनी ही मात्रामें रक्तबीजकी तरह नया नया पैदा होता जाता था? आखिर रात बढ़ आई, और मित्र गोष्ठी भङ्ग हो गई। दूसरे दिन मित्रोंकी बैठकने हमें विवश किया कि यज्ञोपवीत पर कुछ लिखूं, किन्तु उधर ४ साल तक पूरे झंझटोंमें वेसुध रहनेके कारण मित्राशा पूर्ण न कर सका। कलकत्ता आने पर एक दिन फिर वही गर्मीकी सन्ध्या थी, और एक पुस्तक

विक्रेता महानुभावने, बड़ी चाहसे यज्ञोपवीत पर एक ग्रन्थ लिखनेका आग्रह प्रकट किया। इसके कुछ ही दिनों बाद एक दिन मित्रवर बाबू सभापति राय जीके यहां बैठा-बैठा कुछ-कुछ आर्यसमाजकी चर्चा चला रहा था, उसी बीचमें एक नवयुवक महाशय यज्ञोपवीत पर कुछ शंका कर बैठे। उत्तर जो मैंने उसका दिया, इसपर वहां भी सबोंने यज्ञोपवीत पर एक ग्रन्थ लिखनेके लिये प्रेरित किया। बस, उपेक्षा असम्भव थी। ईश्वर के नामसे, कांपते हृदय, और दुःसाध्य विषयपर, विवश हो मन-प्रयासको जुटाना पड़ा। मैं नहीं जानता कि ग्रन्थ कैसा हुआ है। इसे सुधीवृन्द ही बता सकेंगे। मैं केवल यही निवेदन करूंगा, कि यदि इस विषयमें विद्वानोंको किसी अभावका अनुभव हो, तो दया कर उसे हमें सूचित करें, जिससे अगले प्रकाशनमें मैं उससे लाभ उठा सकूं। यह कष्ट इस लिये देता हूं कि बहुत ही अल्प समयमें और अत्यन्त जरूरी झंझटोंके कारण तथ शीघ्रतावश यह ग्रन्थ निकाला गया है, अतः सम्भव है, भूलें भी अधिक हों, उसे यथास्थान पाठक सुधार कर पढ़ें। मुझे पूर्ण विश्वास है सुयोग्य पाठक अवश्य ग्रन्थपाठके समय संस्कृतके निम्न वाक्यको स्मरण रखेंगेः—

"मक्षिकाव्रणमिच्छन्ति, गुणमिच्छन्तिसाधवाः ।"

अनुविधेय :—

—विश्वनाथ

१५।१२।३८

समर्पण

प्रतिपल

संस्मरणीय

पूज्यतम

पितृदेव

स्वर्गीय

पंडित

प्राणनाथ मिश्र

की

स्मृतिमें

सादर समर्पित।

उनका एकमात्र

पुत्र

—विश्वनाथ।

मंगलम्

नमो नमो हरिकेशायोपवी-
तिने पुष्टानां पतये नमः ॥

(यजुर्वेद, १६।१७)

अर्थ (संस्कृत) :— नमः= नमस्करणमन्नञ्च, नमः=अन्नादिकम्, हरिकेशाय=हरिता केशा यस्य तस्मै, उपवीतिने=प्रशस्तमुपवीतं यज्ञोपवीतं विद्यते यस्य तस्मै नमः ॥

यज्ञोपवीत शब्द की सिद्धि

(१) यज्ञ= (पु०) यज् धातुसे (देव-पूजा, संगतिकरण और दानमें) "इज्यन्ते देवता अत्र" इस विग्रह द्वारा पाणिनीय के (३।३।००।) सूत्रसे नङ् प्रत्यय कर सिद्ध हुआ।

(२) उपवीत—यह शब्द (व्या धातुसे संप्रसारण कर (क्ली) उप+और वी+उपसर्गपूर्वक इ+धातुसे क्त=प्रत्यय करनेपर=उपवीत सिद्ध हुआ।* बादमें –

यज्ञ+उपवीत-मिलानेपर यज्ञोपवीत बना है। संस्कृतमें इसे "यज्ञे धृतं उपवीतं" ऐसा कहा गया है। इसे इस समय जनेऊ, जनौ, पैता, यज्ञ सूत्र और जनौवा कहा जाता है। वेदमें इसका प्रसिद्ध नाम "परिवीत" है। ब्राह्मणादि ग्रन्थोंमें "वास" भी कहा गया है। इसके पर्यायमें पवित्र, व्रतबन्ध, ब्रह्म-सूत्र, त्रिकी, द्विजायनी, सुवास, पैता (बंगालमें), सावित्र, और सावित्री-सूत्र आदि भी कहते हैं।

---

* अमरकोष २-७-४६ में, और हेमचन्द्र अभिधान चिन्तामणिके ८४५ में देखो।

इसपर एच० एच० विलसन (H. H. Wilson) का मतः—

यज्ञोपवीत N (तं) the Sacrificial cord originally worn by the three Principal Casts of Hindus at present from the loss of the pure Kshatria and Vaisya casts in Bengal confined to the Brahmanical order. E. यज्ञ Sacrifice and उपवीत thread यज्ञोपवीतिन् M (नी) A Brahman, &c. invested with the sacred thread. *

अर्थात्:--यह यज्ञका तागा या सिलसिला, मूलतः तीन वर्ण ब्राह्मण, क्षत्रिय, तथा वैश्योंके निरूपणार्थ हैं। बंगालमें इस समय ब्राह्मणोंके आदेशसे क्षत्रिय और वैश्यको यह नहीं है। यह समस्या केवल बंगालकी ही नहीं, अपितु समग्र भारत भरकी है। मुसलमान बादशाहोंके समयसे उपवीतके अधिकारियोंने भी इसे उतार फेंका। नवाबोंका यज्ञोपवीतपर बड़ा भारी अत्याचार होता था। बंगालमें भी शिखा-सूत्रको इसी भयसे नवाबके खुसामद पसन्द और कायरोंने उतार दिया। जिनके पास बंगालमें उपवीत हैं, वे भी उस समय बहुत कष्ट इसके धारणमें उठा चुके हैं।

उन्नीसवीं शदीके महामान्य जर्मन पंडित रोथ साहबका मत जर्मन भाषामें :—

Dir furdas opfir vbliche Beham Gung mifder

---

* Sanskrit-English Dec. by H. H. Wilson (18-32)

Leibgen 3 chnur vber dec link ˉSchul ter spater auch Bez.

—Sanskrit-worter buch, by R. Roth, V. 4 (18·62)

भावार्थ :—तीन वर्णोंका निरूपक और स्कूलमें प्रवेशके लिये प्राचीन समयसे यह द्विज चिन्ह यज्ञ-सूत्र है।

फ्रेञ्च भाषाके महान् विद्वान् एन० छोचोपाक अपनी ही भाषामें यज्ञोपवीतको fait de ceidrele cordon Brahmanique, लिखते हैं। (Dec. Sans.-fransaes.)

भावार्थ :—ब्राह्मणादि ३ वर्णों के लिये यह (यज्ञोपवीत) धागा अध्ययनमें पहना जाता है।

तैत्तरीय संहिताके अन्दर इसका विशेष प्रमाण पाया जाता है। यथा—

"नवीतं मनुष्याणां प्राचीना वीतं पितृणामुपवीतं देवानामुपव्ययते देव लक्ष्ममेव तत्कुरुते।"

तै० सं० २-७-११-१ ॥ गृह्यसंग्रह २-५८ और कौशिकसूत्र २।

यह मंत्र उपरोक्त तीनों ग्रन्थोंमें आया है। इसका भावार्थ है कि "मनुष्य काममें अर्थात् गृहकार्यके समय यज्ञोपवीतको कंठी (माला) की तरह पहने। वेदके स्वाध्यायके समय (तर्पण) प्राचीना वीती (दाहिने कंधेपर) पहने। सन्ध्या हवनादिके समय बायें कन्धेपर रक्खे। यजुर्वेदमें आता है :—

'नमो नमो हरिकेशायोपवीतिने पुष्टानां पतये नमः ॥'

(यजुर्वेद, १६।१७)

इसका अर्थ है :—यज्ञोपवीतधारी हरे केशवालोंकेलिये सत्कार हो, और इन्हें अन्नादि पदार्थ प्राप्त हों। निरोग पुरुषोंकी रक्षा करनेवालोंके लिये नमस्कार हो*।

यज्ञोपवीतके प्रमाण और भी नीचे लिखे ग्रन्थोंमें द्रष्टव्य हैं, यथा :—"यज्ञोपवीत" (श० ब्रा० २, ४, २, १ । ६, १, १२ १८ । १२, ५, १, ६ ।)। "यज्ञोपवीति देवानाम्" (कौ० सू० १-८-६७) "यज्ञोपवीति देवानां" (महाभा० ३, १५८ ४१, १४, १२५२) इसी ग्रन्थमें—"शुक्र यज्ञोपवीतिन्" १३-८४४) "नाग यज्ञोपवीतिन्" (७-४६) इत्यादि भी मिलते हैं।

ऋग्वेदमें परिवीत शब्द अवश्य यज्ञोपवीतका पर्य्याय है। भेद केवल "उप" और "परि" उपसर्गमें है, और एक ही अर्थमें प्रयोग भी हुआ है। यह शब्द परि=उपसर्गसे वी=क्त, प्रत्यय द्वारा सिद्ध हुआ है।

इस शब्दका अर्थ मानियर विलीयम्सने cover, pervoded तथा encompass किया है। इसी प्रकार एच० एच०

---

* यह अर्थ स्वामी दयानन्दका है, और यह मंत्र का० श्रौ० सू० (१-७-२४) में भी है। मनुमें भी (२-६३) इसका वर्णन है।

विलसनने भी invested, overspread, तथा pervoded किया है।

ऋग्वेदमें मंत्र आता है:—

"युवा सुवासाः परिवीत[1] आगात्सउ श्रेयान् भवति जायमानः। तं धीरासः कवयः उन्नयन्ति स्वाध्योमनसा देवयन्तः॥" (३।८।४॥)

अर्थ :—(युवा) युवावस्थाको प्राप्त कर (सुवासाः) सुन्दर वस्त्र धारण किये (परिवीत) यज्ञोपवीतको पहने हुए, "परितः—सर्वतः वीतः सूत्रेणाच्छादितः" (आगात्) अच्छी तरहसे घरको आवे। (सउ), और वह (जायमानः) प्रसिद्ध हो (श्रेयान्) अति श्रेष्ठ (भवति) होता है. और (नः) उसको (देवयन्तः) श्रेष्ठ कामना करनेवाले (धीरासः) बुद्धिमान् (स्वाध्यः) अध्ययन करनेवाले (कवयः) सर्वोत्तम प्रवक्तागण (मनसः) अन्तः करनेसे (उन्नयन्ति) उन्नत करते हैं। इसी मंत्रपर स्वामी दयानन्द जीका भाष्य :—

योऽष्टमं वर्षमारभ्य ब्रह्मचर्येण गृहीत विद्यो-युवा सुवासाः परिवीतः सन् गृहमागात्स उ

---

[1]परिवीत शब्द ऋग्वेदमें इतने स्थानोंपर आये है—१,१२८,-१।१,१६४,३२।३८,४।४,१,७।४,३,२।१०,६,१।१,१३०,३।

विद्यायां जायमानः सञ्छ्रेयान् भवति तं देव यन्तो धीरासः स्वाध्यः कवयो मनसोन्नयन्ति ॥

(५ भा०, सं० १६७२, द्वि० वृ०) ।

अर्थः—जो आठवें वर्षसे आरम्भ कर ब्रह्मचर्यसे विद्या ग्रहण तथा युवापनमें सुन्दर वस्त्रोंको और परिवीतको धारण कर घरको आता है, वह विद्यामें प्रति पत्तिशाली एवं अत्यंत प्रशंसित होता है। उस धीर श्रेष्ठ-चेष्टा और स्वाध्याय करनेवालेको विद्वान् लोग मनसे उत्तम मानते हैं।

अब इस मंत्रके देखनेसे निश्चय होता है, कि यज्ञोपवीतका विषय वेदसे प्रतिपादित हो, अनादि कालसे चला आता है। आगे एक और मंत्र पाठकोंके समक्ष दिया जाता है:—

(ब्राह्म ऋषिः विश्वेदेवा देवता ।)

देवा एतस्यामवदन्त पूर्वे सप्त ऋषयस्तपसे ये निषेदुः। भीमा जाया ब्राह्मणस्योपनीता दुर्धां दधाति परमे व्योमन् ॥ ऋ० मं० १०, सू० १०६, मं० ४॥

अर्थः—जो सप्तऋषि तपस्याके लिये पहले प्रवृत्त हुए थे, वे प्राचीन देवगण (विद्वान्) ऐसा कहते हैं, कि इस ब्राह्मणकी जायाके समान यज्ञोपवीतकी शक्ति है, वह शक्ति अत्यन्त शुद्ध चरित्रा, एवं कठिन कर्म परायणा है। इसके धारणसे निकृष्ट जन भी परम पदको पहुंच सकता है।

इस मंत्रका अर्थ सायणाचार्यने बृहस्पतिकी जुहू नामक स्त्रीके चरित्र दोष परक किया है। स्वर्गीय रमेशचन्द्रने भी उसी अर्थको दिखाकर टिप्पणीमें लिखा है, कि "मैंने इस सूक्तका नहीं समझा। यदि बृहस्पतिकी स्त्रीको चरित्रहोना हो दिखाना इस सूक्तका उद्देश्य है, तो यह सूक्त आधुनिक कहा जायगा।"*

वास्तवमें सायणाचार्यने इसका अर्थ अलंकार परक न कर भूल किया है। स्वा० दयानन्द जीने १० म०का अर्थ नहीं किया अतएव मैं नहीं कह सकता कि उनके मतसे इसका क्या अर्थ होता? किन्तु जब कि इस सूत्रके द्रष्टा ब्रह्मा ऋषि हैं, तो मेरे मतसे इसका अर्थ ब्रह्म परक ही होना आवश्यक है। फिर जब स्वयं मन्त्र ही "ब्राह्मणोस्योपनीता" कहता है, तो ब्रह्म-कर्म और उसकी शक्तिदायनी यज्ञोपवीतको छोड़ अन्य अर्थका करना ठीक नहीं जंचता। एक बात और ध्यान देनेकी है; शक्ति शब्द स्त्रीवाची है, और इसीसे यह स्त्रीके विशेषणमें प्रयोग हुआ है, अतएव जो अर्थ मैंने किया है वह यथार्थ प्रतीत होता है।

वेदोंमें इस प्रकार बहुतोंने विचित्र २ अर्थ किये हैं। मेरा यह विषय यहांका नहीं हैं, अतएव मैं यहां उन्हें उद्धृत नहीं कर सकता। इन विषयोंके ज्ञानार्थ मेरी लिखी "वेदका रूपक विज्ञान" ग्रन्थ देखना चाहिये।

* रमेशचन्द्र कृत बंगला ऋग्वेदभाष्य, पृ० १३०१ (१३-१६ साल)।

प्राचीनत्वः

यद्यपि यह कहना बहुत ही संदिग्ध स्थलको अतिक्रम करना होगा, कि यज्ञोपवीत ठीक ठीक कबसे चला। आजतक निश्चयपूर्वक जिन जिन ग्रन्थोंको पुराने होनेकी सनदें मिली हैं, उनमें तो अवश्य इसके धारणका प्रमाण देखा जाता है। वह चाहे किसी रूपमें हो, परन्तु रूपका परिवर्त्तन ऐतिहासिक सामग्रीको बढ़ानेके सिवा घटा नहीं सकता, अतएव इन आधारोंपर और दृष्टिगत वेद तथा अवस्ता शास्त्रके प्रमाणोंपर निर्भर करते हुए, यह अवश्य कहा जायगा कि यज्ञोपवीत धारणकी विधि सृष्टिके नज़दीकी समयसे ही चली है।

दूसरा आधार जो तर्कका है वह भी एक दृढ़त्व रखता है। यज्ञोपवीत मूलतः पढ़नेवाले छात्रोंके चिन्ह रूपमें आरम्भ होकर विद्याके व्यवसाय करनेकी ज़रूरत तक रहता है। इसीसे इसको अंग्रेज पंडितोंने Uniform कहा है।

सच पूछिये तो इसकी महत्ता गुरूकुलमें प्रवेशके समय अर्थात् वेदारम्भके लिये ही आदि प्रतिष्ठित है। कहीं कहीं तो यह भी प्रमाण मिलता है, कि गुरूकुलमें जब अन्तिम परीक्षा (Final Examination) याने स्नातक होनेके समय जो छात्र फेल करता था, उस समय उससे यज्ञोपवीत छीन लिया जाता था। यह प्रथा अधिक दिनोंतक चिरस्थाई न रही यह ठीक है, परन्तु प्रथा थी यह अच्छी। इस कारण कुछ लोग इस

कर्मको अर्थात् उपनयन संस्कारको शिक्षा संस्कार कहते हैं। यद्यपि यह आख्या किसी अंशोंमें उपयुक्त है भी, परन्तु ऐसा होने से यह एकांश हो जाती है। साथ ही जबकि इसकी आवश्यकता वानप्रस्थतक है। सन्यासाश्रममें सन्यास धारण करनेवाला व्यक्ति शिखा और यज्ञोपवीतको उतार फेंकता है। वह उस समय उतारता हुआ कहता है :—"हे विद्वान्! जिससे सम्पूर्ण ब्रह्माण्डको अग्नि धारण करती है, और जिससे तू गृहाश्रमस्थ सभी पदार्थोंके मोह— यज्ञोपवीत और शिखा आदिको धारण करता है, उनको छोड़। उस त्यागसे हमको इस सन्यास रूप सुख देनेवाला, एवं प्राप्त होने योग्य यज्ञको विद्वानोंमें जानेको मिले।"* यहांपर यज्ञकी कामना सन्यासीको कर्ममें प्रेरणा करती है, किन्तु एक साधारण भेद उसमें यह है कि वह तीन आश्रमोंके बन्धनसे मुक्त होकर रहे। बोध होता है कि यज्ञोपवीतका बन्धन समाजको सुचारू रूपसे चलाने और शक्तिमानोंके लिये है। समाज जब देख लेता है कि यह अब सामाजिक कार्यके लिये शृङ्खलित शक्ति व्यय नहीं करेगा, तो उसे उसके बन्धन (यज्ञ सूत्र) से मुक्त कर देता है। इससे यज्ञोपवीतका गौरव बहुत बढ़ जाता है। मनुष्य स्वभाव सेवाके लिये ही प्रधान जान पड़ता है। उस सेवाको पूर्ण

---

* येना सहस्त्रं वहसि येनाग्ने सर्व वेदसम् तेनेमं यज्ञं नो-वह स्वर्देवेषु गन्तवे। अथ० कां० ६ सू० ५ मं० १७॥

करनेमें एक नियम होना चाहिये। कोई भी कार्य बिना नियम, शृङ्खला, और उद्देश्यके सफल नहीं हो सकता, अतएव प्राचीन सुसभ्य जननायक और समाज सेवकोंने सरल यज्ञोपवीतके नियम-बंधनसे समस्त मनुष्योंको सुसंगठित किया था। उनका उद्देश्य था संसारको स्वर्ग करना। नियन्ता की इसी निधिका मुख्य रक्षण, सेवा और उनके प्रति उत्कट भाव भरी श्रद्धा दिखाना ही लक्ष्य था। कौन ऐसा बुद्धिमान् होगा जो आज इस महत्वपूर्ण आदर्शको अपनानेमें अग्रसर नहीं होगा? दुनियां तभीतक है, जबतक नियमबद्ध उसके प्राणी हैं। जिस दिन इसमें जरा भी झोंक पड़ा उसी दिन नृशंसताके द्वारा बहाये गये रक्तमें, असभ्यताके दुर्दान्त कुण्डमें, कलहके प्रलयाग्नि और विशृङ्खलाके ताण्डव नृत्यमें, झनकते, बरषते, झंझावातोंमें, सब सत्यानाश हो जायगा; अतएव नियम-रक्षा संसारकी रक्षा है, और उस व्रतके लिये व्रतबन्ध (उपवीत) धारण संसारको कल्याणके सरल और सुन्दर मार्गपर प्रेरित करता है।

शतपथ ब्राह्मणमें लिखा है :—

प्रजापति वै भूतान्युपासीदन्। प्रजा वै भूतानि विनोधेहि यथा जीवमेति, ततो देवा यज्ञोपवीतिनो भूत्वा दक्षिणां जान्वा च्योपासीदंस्तानब्रवीद्

यज्ञो वोन्नममृतत्वं व उर्ज्जः सूर्यो वो ज्योति-रिति ॥ (२-४-३१)

अर्थात् :—प्राणीगण जब प्रजापति (परमेश्वर) की उपासना करते थे, और देवगण तो यज्ञोपवीत धारण करके ही करते थे।

यहांपर सूर्य्योपासनासे सम्भवतः सूर्यपस्थान ही है, क्योंकि सन्ध्याके उपस्थान मंत्रमें स्पष्ट "सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च स्वाहा" कहा है। वर्त्तमानमें जिस रूपसे सूर्य पूजा प्रचलित है, उसका यहां ग्रहण नहीं है।

मन्त्र ब्राह्मणमें लिखा है :—

"प्राणानां ग्रन्थिरसि मा विस्रसोऽन्तक इदं ते परिददाम्यमुम्।"* (मं० ब्रा० १-६-२०)

अर्थ - तू प्राणोंकी ग्रन्थि है, और दुःखका विनाशक होकर तू इस शरीरमें प्रविष्ट होवो, मैं तुझे धारण करता हूं।

इसी प्रकार और भी सामवेदीय मंत्र ब्राह्मण† में यज्ञोपवीत धारणका उल्लेख पाया जाता है। कौषितकी ब्राह्मणके उप-निषद्में लिखा है:—

---

* यह मन्त्र नारायणोपनिषद्में इस तरह आया है :—
"ॐ प्राणानांग्रन्थिरसिरूद्रोमा विशान्तकः। तेनान्नेनाप्यायस्व। इति॥

† मन्त्र ब्राह्मण १।१।७॥

सर्वजिद्धस्म कौषीतको स्त्र्यन्ते आदित्यमुप-तिष्ठते यज्ञोपवीतं कृत्वोदकमानीय त्रिःप्रसिच्योद-पात्रम् ।"

अर्थः—सर्वजित कौषीतकी यज्ञोपवीत धारण कर, जल ले आकर, और उदक पात्रको सींचित कर, सूर्यकी उपासना करते थे। यहांपर पं० सत्यव्रत सामश्रमीका वक्तव्य जानने योग्य है, वे लिखते हैः—

वस्तुतो वेदाऽध्ययनाचार्य समीपे नयनमेवोप-नयनम्, यज्ञोपवीत धारणान्तु दैवकार्यानुष्ठानार्थ-मेव सूत्र कारेण विहितमिति, यदायदैव दैव कार्यं कर्त्तव्यम् भवेत्, तदा तदैव धार्यस्या-दिति ॥ (गो० गृ० भा० २।१०।३७)

अर्थः—वस्तुतः वेद पढ़नेके लिये आचार्यके समीप बालकको ले आना ही उपनयन है। यज्ञोपवीत धारण तो देवकार्य अनुष्ठान के लिये है। ऐसा सूत्रकारने विधान किया है। जब जब देव-कार्य करना हो तब तब इसे धारण करे? यहांपर विद्वान् साम-श्रमीजीने यद्यपि उपवीतका बहुत हल्कासा रूप दे दिया है, फिरभी यज्ञोपवीत सर्वदा ही धारण किये रहे यह आदेश बहुत अच्छे, पुराने और प्रामाणिकोंके हैं। पारस्कर गृह्य सूत्रमें लिखा हैः—

येनेन्द्राय बृहस्पतिर्व्वासः पर्य दधादमृतं तेनत्वा परिदधाम्यायुषे दीर्घायुत्वाय बलायवर्च्चसे ।

—पा० गृ० २।२।७।

अर्थः—जिस तरहसे इन्द्रके लिये बृहस्पतिने यज्ञोपवीत (वासः) दिया, उसी तरह आयुकी, बलकी, तथा बुद्धिकी चिर बृद्धिके लिये इस यज्ञोपवीतको धारण करता हूं। पारिजात स्मृतिसारमें लिखा है :—

"यज्ञाख्यः परमात्मा य उच्यते यैहोतृभिः,
उपवीतं यतो स्येदं तस्माद्यज्ञोपवीतकम् ।"

इस श्लोकसे यह प्रमाणित हुआ कि यज्ञ नाम परमात्माका है, और उस यज्ञके लिये जो (प्रतिज्ञा-सूत्र) धारण किया जाता है, वह यज्ञोपवीत होता है। ऐसा ही पारस्कर कहते हैं:—

यज्ञोपवीतमसि यज्ञस्यत्वा यज्ञोपवीतेनोपनह्यामि ।"+

इन तमाम बातोंसे यही दिखायी पड़ती हैं, कि सृष्टिकी जिस किसी अवस्थामें जब मनुष्योंने अपने ज्ञानमें व्यवहारका रूप दिया है तबसे ही यज्ञोपवीत प्रथा चली है। क्योंकि यज्ञका साधारणतः सर्वप्रधान अर्थ है व्यवहार।*

+ इसपर प्रसिद्ध मन्त्र "मीमांसा" शीर्षकमें आगे है।

* देवपूजा, संगतिकरण और दान।

किसी भी व्यवहारिक जीवनके लिये यह नितांत प्रयोजनीय है, क्योंकि समयका सदुपयोग मानव जीवनकी उन्नतिका मूल साधन है। इस उपयोगके लिये स्मृति चिन्ह Rotine परम संरक्षणीय है। बस, इन्हीं आवश्यकताओंने ऋषियोंको यज्ञोपवीत (व्रतबन्ध या प्रतिज्ञा-सूत्र) धारणके लिए एक सुन्दर रूपमें प्रेरित किया। इतनेपर भी एक महत्वपूर्ण विषय यहां यह रह जाता है कि वेदकार जिस तरह सृष्टि विज्ञानके लिये "यथा पूर्वमकल्पयत्" कहकर किसी और भी क्रमसे आनेवाली सृष्टिकी संगतिको दर्शाते हैं, ठीक उसी तरह यज्ञोपवीत धारणके समयकी उत्पत्ति-विज्ञानमें भी ऋषि कहते हैं "प्रजापतेयत् सहजं पुरस्तात्" अर्थात् जिसे परमेश्वरने पहलेसे निरूपित किया।

यहांपर परमेश्वर अनुभूत करानेवालों (ज्ञानदाता) के अर्थमें है। यह ठीक है कि ज्ञान अनन्त है, और अरूपवान् है, अतएव उसका परिपालक (Accomplishing) जो मन हैं वही है, प्रजापति* और जिस प्रकार इस प्रजापतिने (मनःज्ञान)

---

* "यः प्रजापतिस्तन्मनः।" जै० उ० १, ३३, २॥ "प्रजापतिवमनः", कौ० १०, १॥ २६।३॥ सा० १, १, १॥ त्तै० ३, ७, १, २। श० ब्रा० ४, १, १, २२। "प्रजापतिर्वैमनश्छन्दः।" यजुः १५।४। श० ८।५।२।२। "मनइवहिप्रजापतिः", तै० २, २, १, २॥ अपूर्वा (प्रजापतेस्तनूविशेषः) तन्मनः ऐ० ब्रा० ५, २५॥

संसारके अनेक आदितम गूढ़से गूढ़ तत्व-सामग्री और विज्ञानको जाना है, उसी तरह इसके परिधानकी भी अत्यन्त आवश्यकता समझ धारण किया है, अतएव यह धर्म है, और इसका आधार अति प्राचीन है। अगर यहांपर अनेकतम अर्थवाले प्रजापतिको हम विशेष इतिहासके चट्टानपर न भी चढ़ावें, तो भी इतना अवश्य प्रतीत होता है कि यह प्रथा निश्चय बहु पुरानी है। अब मैं यहां एक और अन्वेषकके मतको देता हूं, जिनके परिश्रम महान् हैं, वे हैं,—बाल गंगाधर तिलक। आपने अपने "ओरियान" (Orion) नामक ग्रन्थमें लिखा है कि :—

The above verse at once directs our attention to the place where we may expect to find the traces of orions belt in the indeam works. I have before pointed out that orion or mrigashiras is colled Prajapati in the Vedic works, otherwise called Yajna. A belt or girdle or a piece of cloth round the waist of onion or Yajnopavita, the Upvita, or the cloth of Yajna, thr teerm, however now denotes the sacred thread of the Brahmans, and it may naturally be asked whether its character, it not the origion to the belt of orion. I think it does on the following grounds.

—The Onion Chap. VI. P. 144-145.

तिलकका भावार्थ :—मृगशिरा नक्षत्रको वैदिक शब्दोंमें प्रजापति और यज्ञ कहते हैं। किसी समय ओरायणके अनुसार ६,००० वर्ष पूर्व इस नक्षत्रसे वर्षका आरम्भ माना जाता था। वर्षके आरम्भसे अन्ततक नाना यज्ञ किये जाते थे। मृगशीर्ष नामक नक्षत्र मण्डलमें कुछ ताराओंकी स्थिति मेखलाके आकारका है। मृगशीर्ष (प्रजापति या यज्ञ) की मेखलाको देख कर ऋषियोंने मेखला अर्थात् यज्ञोपवीत तैयार किया था। पट्टा, डोरी, अथवा कपड़ेका एक टुकड़ा जो यज्ञारम्भमें कमरपर बांधा जाता है, वही यज्ञोपवीत इस नामसे ख्यात है। पारसी लोग भी जो आर्य वंशज हैं, और किसी समय आर्योंके साथ भारतमें रहते थे, वे भी कमरबन्ध (कधन) के रूपमें यज्ञोपवीत पहनते थे, परन्तु भारतमें यह कन्धेसे लटकाया जाता है। पारसी और भारतीयोंके यज्ञोपवीत धारण करनेके मन्त्रोंमें भी बहुत कुछ सादृश्यता है।

भारतीयोंका मन्त्र :—

"यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात्, आयुष्यमग्र्यं प्रतिमुञ्च शुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः।"

जिसका अर्थ है† :—

"यज्ञोपवीत परम शुद्ध है, ईश्वरसे यह स्वभावसिद्ध उपदिष्ट

† The Orion Chap. VI. P. 144-145.

है। यह आयु वर्द्धक निर्मल और मुख्य है। यह तुम्हें बल और तेजका देनेवाला हो।" यहांपर माननीय तिलकने केवल प्रजापति शब्दसे मृगशिराका ग्रहण किया है।

पारसियोंके यज्ञोपवीत धारणका मन्त्र :—

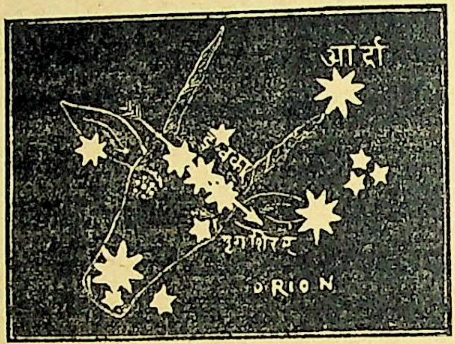
फ्राते मज्दाओ बरत् पौरवनीम् एयाओं धनिमस्ते हर-पाये संघेम, मैन्युतस्तेम् वंघुहिम् दयेनीम् मज्दबास्नाम् ॥

जेन्द अव०, पा० ३, पृ० २३८ (मील संकलन)

भावार्थ :—ये डोरा तू! बहुत बड़ा है, उज्वल है, और आयु-बलका देनेवाला है। तुझे मज्दाने आरोपित किया है। मैं तुझे पहनता हूं।

पारसी बालक और बालिकाओंको बचपनमें रेशमके वस्त्र पहनाये जाते हैं। ६ वर्ष और ३ मासमें उन्हें यज्ञोपवीत बड़े आडम्बरसे दिये जाते हैं, और तबसे ही रेशम वस्त्र धारणका आवश्यक नियम शिथिल हो जाता है।]

आदरणीय तिलक महाराजने जहांसे यज्ञोपवीतकी धारणा का स्थान माना है, उस मृगशिरा नक्षत्रका चित्र वे इस प्रकार देते हैं :—



[इस चित्रको देखकर पाठक स्वयं, यज्ञोपवीतसे इसका मेल कहांतक मिलता है, इसे सोच लें ?]

यहांपर एक बात माननीय तिलकजी भूलसे गये हैं। वहुत सम्भव है, यदि वे इसे धरते तो प्रजापति शब्दसे आकाशके तारा ग्रहणका कष्टसाध्य प्रयास वे न करते, उस दशामें समाज सम्बन्धी धार्मिक नियम भी साफ हो जाता। पाश्चात्य पंडितों द्वारा किये गये वेद सम्बन्धी परिश्रम नवीन क्रीड़ायें हैं, यद्यपि उनके अध्यवसाय और रुचिकी प्रशंसा मैं भी मुक्त-कंठसे करता हूं, उनके कामोंका ऋण भी भारतीयोंपर है, फिर भी इन अंधेरेमें टटोलनेवालोंपर निर्भर करना विपद संकुल है। ऐतरेय ब्राह्मणके वसंत-संपात और शरद-संपात सम्बन्धी गणनाका विचार ही हमें स्पष्ट लाखों वर्षोंकी सूचना देती है, और मानना पड़ता है कि आजसे ३ लाख वर्ष पूर्व संपात नक्षत्र मण्डलकी गणना आर्या ऋषि जानते थे। फिर ६०००

वर्ष पूर्व की ही, ऋषियोंका नक्षत्र ज्ञान कैसे माना जाय। रही बात प्रजापति की, यज्ञकी, तथा मृगशिरा परक अर्थ की। मैं नहीं समझ सका, कि यह (प्रजापतिका मृगशिरा) अर्थ किस महत्वशील ग्रन्थके आधरपर दिया गया है। इसे यदि लेखक विशेष रूपसे उद्धृत करते तो अच्छा होता। उपवीतके सम्बन्धमें इसकी संगति भी हृदयमें नहीं बैठती। प्रायः प्रामाणिक ग्रन्थोंमें* अङ्गिराको प्रजापति कहा गया है, तथा और भी अनेक अर्थोंमें यज्ञ तथा प्रजापति शब्द आये हैं, किन्तु यहां अङ्गिरा-ग्रहण ही अधिक युक्ति संगत है। कारण यह है, कि यज्ञादिका और ब्रह्म उपासनाका (आध्यात्म और कर्मकाण्ड) प्रथम आरम्भ कर संसारमें फैलानेवाला अङ्गिरा ऋषि ही हैं। अङ्गिरा और अथर्वा एक ही है; और इन दोनों बातोंकी पूर्ण जानकारीके लिये नीचे प्रमाणोंको समुपस्थित किये जाते हैं। प्रमाण प्रायः वेदोंके ही हैं, क्योंकि इस विषयमें वेदोंको छोड़ अन्य ग्रन्थ विशेष महत्व नहीं रखते।

"त्वामग्ने पुष्करा दध्यथर्वा निरमन्थत। मूर्ध्नो विश्वस्य वाघतः।"

ऋ० ६, १६, १३। और यजुर्वेदमें भी यह मंत्र(११, ३२)में है।

---

* अथर्वा वै प्रजापतिः। गो० पू० १।४॥ विशेष विवरण इतिहासकी एक झलकमें देखें।

सायणाचार्यका अर्थ :—हे अग्ने! अथर्वा ऋषिने सिरके समान विश्वको धारण करनेवाले पुष्करसे तुम्हें मथकर निकाला है।

सायणाचार्यके इस अर्थपर रमेश्चन्द्र महोदय लिखते हैं:— "अथर्वाने पुष्करसे अग्निको मथकर पैदा किया था, इसका प्रकृत अर्थ क्या है? सायणने प्रजापति द्वारा पद्म पत्रके ऊपर जगतकी सृष्टिके पौराणिक कथाको लेकर पुष्कर अर्थमें यहां पद्म किया है। सामवेदके टीकाकार महीधर पुष्कर अर्थसे जल एवं अथर्वा अर्थसे वायु ग्रहण कर एक प्रकारका अर्थ किये है। फ्रेंच पंडित् लां लोईज़† (Long Lois) ने पुष्कर अर्थसे अरणी (समीकी लकड़ी जिसके रगड़नेसे आग निकलती हैं) काष्ठके छिद्रका ग्रहण किया है, क्योंकि इसी छिद्रमें अन्य काष्ठके घर्षणसे ऋषिगण अरण्यमें अग्नि निकालकर यज्ञ करते थे। इनमें जिन जिन ऋषियोंने पहले पहल अग्नि-यज्ञका विशेष रूपसे प्रचार किया है, उन सबोंमें अथर्वा और उनके पुत्र दधीचि ही सर्वप्रथम थे।"*

स्वामी दयानन्दका अर्थ:—हे अग्ने! जिस तरहसे बुद्धिमान् सम्पूर्ण जगतके परिवर्त्तमान अन्तरीक्षसे अग्निको उपरपर मथते हैं, उसी प्रकार अहिंसक (अथर्वा) मैं आपको प्रकाशित करता हूं।

---

† इन्होंने १८-४८ ई० में ऋग्वेदका अर्थ किया है।

* रमेश्चन्द्र कृत ऋग् संहिता (६, १६, १३) का नोट देखें।

इस विषयमें विल्सन (Wilson) साहब लिखते है:—

"This and the preceding stanza corroborative of the share borne by the Angiras (अंगिरा) as in the organisation, it not in the origination of the worship of fire." —Wilson.

पाश्चात्य पंडित प्रवर मूईर (John Muir) भी मनु, अङ्गिरा, भृगु, अथर्वा, दधीचि, प्रभृति ऋषियों द्वारा अग्निहोम चला था, ऐसा मानते है, और उनमें प्रथम अथर्वा या अङ्गिरा हो है।

इस विषयमें और भी बहुतसे मन्त्रौको इस पक्षके समर्थक गण देते है, उनमें एकाध मन्त्रोंके कुछ हिस्सोंको आवश्यक समझ उद्धृत किया जाता है:—

"अग्निर्जातो अथर्वणा।" ऋ० १०, २१, ५।

अर्थ :—अथर्वा द्वारा अग्नि उत्पन्न हुई।

"अथर्व वदग्नि।" ऋ० ६।१५।१७

अर्थ :—अथर्वकी तरह अग्निको मथो।†

"यज्ञैरथर्वा प्रथमः प्रथस्ते।" ऋ० १।८३।५

अर्थ :—यज्ञसे अथर्वाने प्रथम मार्गको विस्तारित किया।

---

† स्वा० दयानन्द सरस्वती भाष्यः—"हेमनुष्याः वेधसः श्याव्याभ्योयमङ कृयन्तमिममुत्यमग्निमथर्व वदमूरं मन्थन्ति।

"यज्ञैरथर्वा प्रथमो विधारयत् ।" ऋ० १०।९२।१०

अर्थ :—यज्ञ द्वारा अथर्वाने पहले पहल तुष्ट किया ।

"स ब्रह्म विद्यां सर्व विद्या प्रतिष्ठा ।" (मु०उ० ३०)

अर्थ :—उस अथर्वा (अङ्गिरा) ने ब्रह्मविद्या (वेदान्त) और सभी विद्याकी प्रतिष्ठा की ।

" अग्निर्जातोऽथर्वणाविदद्विश्वानि काव्या, भुवद्दूतो विवस्वतो ।" ऋ० १०।२१।५ ॥

अर्थ :—अथर्वाने अग्नि उत्पन्न की, उसने सम्पूर्ण काव्यादि (विद्या) जानी ।* प्राणी विद्या, ज्योतिष विद्या आदि जानी ।

"अथर्वात्वा प्रथमोनिरमन्थदग्ने ।" यजु० ११।३२

अर्थ:—(अथर्वा) अहिंसक विद्वान्ने (त्वा) तूझे (प्रथमः) पहले (निः) अत्यन्त (अमन्थत्) मथा ।—स्वा० दया० स० । इस प्रकार इस विषयके और भी बहुतसे प्रमाण पाये जाते हैं, उन सबोंका यहां निवेष करना असम्भव ही नहीं, अपितु पुस्तकके कलेवरको देखते हुए दुष्कर भी प्रतीत होता है ।

इन सभी प्रमाणोंकी आलोचना करते हुए, विषय निर्विवाद और स्पष्ट प्रमाणित हो जाता है कि प्रजापतिका अर्थ अङ्गिरा

*यह अर्थ एक अवस्ता शास्त्रज्ञका है, इन्होंने विवश्वत शब्दसे Vespard का भी ग्रहण किया है ।

(अथर्वा) ही यहां करना परम आवश्यक और संगतिके अनुकूल हैं। लो० तिलकके अर्थके सम्बन्धमें इतनी ही विवेचना पर्याप्त समझ आगे अब और दूसरे वेदज्ञ पंडितोंके विचार भी दिये जाते हैः

अंग्रेजी "इण्डियन वीज़डम" ग्रन्थका मत :—

Precise directions in regard to investiture (उपनयन) with the sacred thread "यज्ञोपवीत" a cere· mony of great importance. Supposed to confer on the recipients (like the Christian rite of bap tism) a second spiritual birth. This is enjoined for a Brahman in his eighth year. for a Kshatriya in his eleventh, and for a Vashya in his twelveth. Though the time may be extended in each case. Those are therefore the three twice-born (Dwija) classes. The twenty second gives rules for the guidance of the young Brahman as a Brahm-charin or "student of the veda" in the house of his preceptor after investiture by him.

He is to go in an easternly or northernly direction outside his place of abode wearing his sacrificial cord "यज्ञोपवीत" over his shoulder. He is first to bathe, and, having sipped water "अकाम्य"

to sit down on kusa-grass, placed so that the points are directed towards the east, and to repeat the Savitri "सावित्री". Then he is to repeat for as long a time as they may think proper, portions of some of the Rik, Yajus, Sam, and Atharva, Brahman, Kalpas, Gathas Narasansis, Itihas ect.

Indian wisdom by monir william. P. I92-95 (1803)

भावार्थ :—यज्ञोपवीत संस्कारके वास्तविक लक्ष्यपर ध्यान देना एक बहुत बड़ा प्रयोजनीय कार्य है। यह कार्य क्रिश्चियनोंके वप्टिस्म् (ईसाई धर्मका दीक्षा चिन्ह) के समान है। इसमें यज्ञोपवीतके लेनेवाले द्वितीय संस्कारित् कर्मको प्राप्त करते हैं। इसके लिये ८ वां, ११ वां, और १२ वां वर्ष क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, और वैश्योंके हेतु निश्चित किये गये हैं। इसके अलावे प्रत्येकके लिये समय बढ़ाये भी जा सकते हैं। इस संस्कारके होनेपर ही ब्राह्मण, क्षत्रिय, और वैश्यगण, द्विज कहलाते हैं। बादमें इन यज्ञोपवीतधारी द्विजोंको बाईसवें वर्षतक गुरुगृहमें वासपूर्वक-ब्रह्मचर्य पालन तथा वेदपाठ करने होते हैं, अनन्तर विधिपूर्वक अभिषेक (समावर्त्तन) क्रिया की जाती है। उन्हें अपने वास-स्थानसे यज्ञोपवीत धारण किये हुए पूर्व या उत्तर दिशाकी ओर बहुत दूर जाना पड़ता है। पश्चात् वे अकाम्यजलमें स्नान कर कुश-आसनपर बैठ, पूर्व दिशाकी ओर

मुखकर बारबार गायत्री मन्त्रका जाप करते हैं। शक्ति–अनुकूल ऋक्, यजुः, सामः, अथर्व, ब्राह्मण, कल्प, गाथा, इत्यादि पढ़ते हैं। इति॥ –विलियम

पाश्चात्य पण्डित प्रवर कीथके विचार :–

A Brahman child in the eighth year from conception or birth, a Kshatriya in the eleventh, a Vaishya in the twelveth, should be received as a student by a teacher. The period can be increased to 16, 22, and 24 years respectively, but after that a youth has lost the right to say the Savitri-verse, and should not be associated with, taken as a pupil permitted to sacrifice or accepted as a son-in-law. If the Savitri is lost for three generations, the right of the sacraments is lost, and can only be regained by the performance of the Shraut rite called the Vratya-stomas, The ceremony of the reception is performed with much form before a fire newly lighted by friction or taken from the household fire. North of it are laid the necessary utensils, a Stome, a fresh garment, a skin, a girdle. a staff, and twenty-one

pieces of wood. The Sutras give innumerable details of the garments, the skin, and the staff, the materials and colour differ for each caste, thus the skin is of a black antelope for a Brahman, of a Ruru deer for a Kshatriya, of a goat or of a sheep for a Vaishya. Their girdles of munja. of a bowstring or wool, and so on, but the differences are endless. The garment should be woven on that day, the teacher makes the pupil stand on the stone to secure firmness. He puts on his new garments and girdle and the sacred by a dialogue of request and acceptance under the auspices of Savitri. and with reference to the sur ancestry. The teacher takes the pupil by the shoulders and grasps his right hand with suitable formulae, and says to him, on the instigation of Savitri, be the pupil Brahspati, taste water, lay wood on the fire, do thy work sleep not by day, then the teacher touches the pupil's heart with a magic formulae to unite their hearts, touches his navel, then whispers formulae in his ear and prays for wisdom for the child, finally he com-

mends him to the care of Gods and demons of Gods only.

The teacher may then or later teach the pupil the Savitri, the two sit opposite to each other. The pupil takes the teacher's right foot or both feet in his right hand, and begs to be tought the verse, the teacher repeats it by quarter, by half verses, and then as a whole. Defferent verses are prescribed for the defferent classes, the pupil then puts kinding wood on the fire forthe first time, and the staff is now usually given, after wich the teacher receives a gift which may be whatever the pupil can afford and the pupil pays reverence to the Sun for three days the fire continues to burn, the pupil must eat nosolt or spiced food, at the end of three days the Brahmans are fed, and bestow benedictions. The first duty of the pupil is to secure wood from the forest, without destroying living truss for the fire which hitends morning and night. Some authorities require also the that he should with prayrrs revere the morning

and evening twilights in the woods wearing the sacred cord and performing the usual ablutions, the making of sectarian marks on the bedy with ashes from the fire is not recognized in any save an interpoloted text in the second place, he must beg food for his teacher and himself, in the first instance from his mother or other friends, twice a day this is done, and two meals, one after the first expedition and one after sun-set, are prescribed. Tnirdly he must sleep on the ground, and he is also enjoined to eat no spiceed or salt food. to a void resorting to women. not to sit on a high seat. act. He is fourthly to be obedient to his teacher to rise when he is spoken to and answer at once.

—The religion and philosophy of the Veda by Arthur Berriedal Keith, Chap. 21. Part III. P. 362-373.

भावार्थः—जन्म ग्रहणके आठवें, एग्यारहवें, और बारहवें, वर्ष में क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, और वैश्योंके बालकोंका उपनयन होना आवश्यक है। उसके बाद उसे किसी गुरूकी देख रेखमें रखना उचित है। १६-२२-२४ वर्षतक भी किसी तरह समय बढ़ाये जा-

सकते हैं। वादमें वह गायत्री मंत्रके अधिकारसे वञ्चित हो जाता है,और उस समय शिष्योंके वीचमें भी उसका स्थान नहीं रहता। उस समय तो वह जामाता होनेके योग्य होता है। यदि गायत्री मन्त्र तीन पीढ़ियों तक नहीं किया गया, तो वह शूद्राचार वाला वंश होकर यज्ञादिसे वञ्चित होता है। इस अधिकारकी पुनः प्राप्तिके लिये व्रात्यस्तोम करना चाहिये। यह व्रात्यस्तोम चकमककी अग्नि या.गृहाग्निमें किया जाता है। कटिबन्ध मेखला आदि धारणके असंख्य प्रमाण हैं, जिसे उपनयन संस्कारमें धारण किये जाते हैं। वालकको गुरू पुनः गायत्री मन्त्र द्वारा वस्त्र पहनाकर खड़ा करता है। पश्चात् बृहस्पति और शिष्यके भावसे वह हवनादि करनेको प्रस्तुत होता है। यहांसे गुरू शिष्यका सम्वन्ध भी स्थापित हो जाता हैं। दिनमें सोना ब्रह्मचारियोंके लिये वहुत निषेध है। वादमें गुरू माया-विद्या द्वारा शिष्यके अन्तःकरनका स्पर्श करे, तथा फिर नाभि स्पर्श कर उसके कानमें सावित्री मन्त्र प्रदान करे। शिष्य ईश्वरके समक्ष ज्ञानके लिये प्रार्थना करे। अग्निमें हवनादि करनेके अनन्तर शिष्यकी ओरसे आचार्यको दक्षिणा दिया जाय, तथा ब्राह्मण भोजन भी कराया जाय। पुनःशिष्य ३ रे, दिनसे हवनके लिये जङ्गलसे काष्ठ संग्रह करे। काष्ठ किसी हरे और जिवीत वृक्षका न होना चाहिये। उपवीत धारीको प्रातः और सायं दो समय सन्ध्या करना सवथा उचित है।

शिष्यको माता या बन्धु वान्धवके निकटसे भिक्षा मांग कर

खाद्य संग्रह करना चाहिये। भिक्षा दिनमें दो वार प्रातः और सायंमें संग्रह करना चाहिये। शयन ब्रह्मचारीको सर्वथा भूमिमें करना चाहिये। मसालेदार भोजन कभी भी नहीं करना चाहिये। किसी भी उत्तेजक पदार्थोंका सेवन कभी भी नहीं करे। उच्चासन पर तो कभी भी बैठना उचित नहीं है। गुरू की आज्ञामें सदा विना आलस्यके रहना उचित है।

—मि० कीथ।

इस पद्धतिमें कीथने कुछ विचित्र विचित्र सी बातें लिखी हैं। सम्भव है इन्हें कहीं किसी प्रांतमें यह देखनेको मिला हो। हम सबोंको प्राचीन शुद्ध पद्धतियोंको ही माननी चाहिये। वर्तमानमें अनेक गृह्यसूत्र हैं। उनमें विधियां भी भिन्न भिन्न हैं। कई एक तो कुछ थोड़ेसे अन्तरमें भिन्न भिन्न वेदोंके आधार पर लिखे बताये जाते हैं। इनमें प्राधनतः पारस्कर गृह्यसूत्र यजुर्वेदीय हैं, आश्वलायन गृह्य ऋग्वेदी, गोभिल, सामवेदीय, और सौनक गृह्य अथर्ववेदीय हैं। उसके बाद भी खादिर गृह्यसूत्र, मानव गृह्यसूत्र, हिरण्यकेशी गृह्यसूत्र, भारद्वाज गृह्यसूत्र, आपस्तम्बीय गृह्यसूत्र, कौषितकी गृह्यसूत्र, आदि बहुतसे हैं। इनमें बहुतसे तो छपे हैं, एवं बहुतसे छपे ही नहीं, और बहुतसे छपे भी हैं तो यूरोपके, वियेना, लण्डन, जर्मन, फ्रांस, अमेरिका और इडनबरा आदि जगहों में। इन सबोंके अतिरिक्त भी बहुतसे ऐसे गृह्यसूत्र हैं, जिनके नाम ही केवल मिलते हैं, देखनको नहीं, अर्थात् ये सब नहीं मिलने वाले ग्रन्थ पहले थे, और अब नहीं मिल रहे हैं।

स्त्रियोंका अधिकार

अब यहां पर प्राचीन ग्रन्थोंके अवलोकनसे यह भी पता चलता है, कि प्राचीन समयमें महिलायें भी यज्ञोपवीत पहनती थीं, साथ ही इतना भी देखनेमें जरूर आता है कि स्त्रियांगण सर्वसम्मत इसमें न थीं। उनमें यह प्रथा पुरुषों जैसी ख़ास ज़रूरी रूपमें सबके लिये न भी हो सकते थे, परन्तु जो धारण करती थीं, उन्हें पुरुषों जैसेही सविध अधिकार मिलते थे, और वे भी इसे तीन आश्रमोंतक बड़े सुन्दर ढंगसे और दृढ़तापूर्वक रखती थीं इनके लिये पुरुष या स्त्री परक कोई भी भिन्नर पद्धतियां न थीं, और कोई आचारें भी भिन्न न थे। उन्हें प्रसूतावस्था और शिशु-रक्षा-कालमें तो अवश्य इससे थोड़ी विरक्ति होती होगी, परन्तु श्रद्धा, आचार, तथा धार्मिकतायें प्रबल होनेके कारण इसे धारण करना सर्वथा कर्तव्य भी समझती थीं। बहुत सम्भव है, कि इसी कारणसे सर्वसाधारण देवियां इसे न रख सकीं। वर्तमान में तो यह बिल्कुल ही उठ गया। कुछ समय तक उन स्त्रियोंने इसे रक्खा जो दास दासी सम्पन्न और उच्चस्था थीं। इतिहास के पन्ने अगर खुलासा नहीं, तो सन्ध्या आदिके विधानको कई एक राजपूत समृद्ध शालिनी ललनाओंके द्वारा दिखा कर, यह माननेको प्रमाणित करते हैं, कि सोलहवीं सदी तक भी भारतमें कहीं कहीं स्त्रियोंमें यज्ञोपवीत धारणके विधान प्रचलित थे। हिंदूके घरोंसे उठे यह उपवीत पारसियोंके स्त्री समाजमें अभी

भी देखनेको मिल जाते हैं। पारसि-रमणियां सदा इसे न पहन कर कभी विशेष शुभ अनुष्ठानमें अभी भी धारण करती हैं।

रामायणकालमें भी दशरथके घरमें छोड़ अन्यत्र यज्ञोपवीत नहीं देखे जाते हैं।

वास्तवमें हिन्दू धर्म शास्त्र बहुत उदार है। इनके यहां जरा भी किसीके प्रति पक्षपात नहीं है। जब हम हिन्दू साम्राज्य और उसके सुन्दर समृद्धिमय दशाको देखते हैं, तो निश्चय होता है कि जब तक भारतीय रमणियां भी पुरुषोंके ही समान समाज, राष्ट्र, और धर्मकी चर्चा नहीं करती थीं, तो इतना ऊंचा आर्यावर्त्त का राष्ट्र कैसे बना था। निश्चित है कि हमारे यहां स्त्रियोंके भी संस्कार होते थे। ये भी ब्रह्मचारियोंके सदृश ही गुरू गृहमें वेदों तथा अन्यान्य सुन्दर आर्ष शास्त्रोंको पढ़ती थीं। आश्रममें रह कर पूर्ण शिक्षता, आत्मावलम्बिनी, ब्रह्म-चारिणी, गृह कार्यदक्षा, हो गार्हस्थाश्रममें प्रवेश करती थीं। इनका चरित्र परम उज्वल होता था। जिनके उदाहरण सीता देवी हैं, और वर्णनकार बाल्मीकि जी महाराज। ओह? असहाय, बनवासके दुःखोंसे क्षीण, समाजके वियोगसे विक्षित, पतिके बिछुड़नसे विधूरित, निरूपाय जानकीने कैसे उस दुर्दान्त रावणसे सतीत्व बचाया? धन्य है वह देश जहां ऐसी ये शिक्षा पाती थीं। क्या आज मिस मेयोका देश या कहीं का कोई देश अथवा समाज ऐसा उदाहरण दे सकेगा?

आगे मैं जिन जिन प्रमाणोंको उपवीत धारणमें दे चुका हूं

पाठक उसे देख चुके हैं, उन मन्त्रोंमें स्त्री तथा पुरुष सम्बन्धी कोई भी भेद नहीं। अब मैं यहां पर और थोड़ा गृह्यादि ग्रन्थोंके वाक्योंको इस विषयमें प्रमाणार्थ उपस्थित करता हूं।

'प्रावृतां यज्ञोपवीतिनीमभ्युदानयञ्जपेत् "सोमोऽददद् गंधर्वायेति" पश्चादग्नेसंवेष्टितं कट मेवं जातीयं वाऽन्यत्पदा प्रवर्त्तयन्ती वाचयेत्, प्रमे पतियानः* पन्थाः कल्पतामिति स्वयं जपेत्।'

(गो० गृ० २।१।१६-२१)

अर्थ:—पीछे उस कन्याको कपड़ासे ढककर तथा जनेऊ पहनाकर, पतिके निकट ले आवे, तथा "सोमोऽददद्" यह मन्त्र पढ़े। अग्निके पीछे स्थापित कर या और कोई ऐसा ही आसन उस कन्याके पैरसे चलाकर, अग्निके समीप बिछाये "वर्हि" तक ले आवे। उस समय इस भावी बधूको "प्रेम"-मन्त्र पढ़ावे।

यजुर्वेदीय पारस्कर गृह्य सूत्रमें "स्त्रिय उपनीता अनुपनीताश्च" इत्यादि बचन लिखे हैं। इससे पता चलता है कि पारस्करके समयमें दोनो तरहकी स्त्रियां थीं। एक उपनीता अर्थात् यज्ञोपवीत धारिणी, और दूसरी अनुपनीता अर्थात् यज्ञोपवीत नहीं धारण करनेवाली। गोभिल गृह्यने पत्नीके

* मन्त्र ब्राह्मण १।१।७॥

लिये इच्छा करने पर सायं तथा प्रातःकाल होम करनेको आज्ञा दी है।†

इन प्रमाणोंसे स्त्रियोंको यज्ञोपवीतके साथ साथ हवन करनेका भी प्रमाण हमें देखनेको मिलते हैं।

पराशर संहिताके प्रसिद्ध पौराणिक भाष्यकार पंडित प्रवर माध्वाचार्य अपनी टीकामें लिखते हैं:—

"द्विविधा स्त्रियो ब्रह्मवादिन्यः सद्योवध्वश्च तत्र ब्रह्मवादिनीनां उपनयनं, अग्नि बन्धनं: वेदाध्ययनं स्वगृहे भिक्षा इति, वधूनां तूपस्थिते विवाहे कथञ्चिदुपनयनं कृत्वा विवाहः कार्यः।"

अर्थात्:—स्त्रियां दो तरहकी हैं—ब्रह्मवादिनी, और सद्य वधू। ब्रह्मवादिनियोंको उपनयन, अग्नि बन्धन (हवन) वेदाध्ययन और अपने घरमें ही भिक्षा करनी चाहिये। सद्यो वधुओंको अवश्य विवाहके समयमें नाम मात्रका उपनयन करना चाहिये। इस कथञ्चित् शब्दसे यह पता लगता है कि माध्वाचार्य यज्ञोपवीत स्त्रियोंके लिये आवश्यक समझते हैं।

---

† (१।३।१५) में "कामः गृह्याग्नौ पत्नी जुहुयात् सायं प्रातर्होमौ गृहाः पत्नी गृह्य एषोऽग्निर्भवति"। इति

यम संहिता कहती है:--

"पुराकल्पेतु नारीणां मौञ्जिबन्धनमिष्यते,

अध्यापनं च वेदानां सावित्री वचनं तथा"।

अर्थात्:—प्राचीन समयमें स्त्रियां यज्ञोपवीत, वेदाध्ययन, गायत्री जाप आदि करती थीं। इसमें पुरा शब्दसे यही पता लगा कि यमके समय स्त्रियोंने यज्ञोपवीत छोड़ दिया था। आगे और भी यम कहते हैं:—

"पिता पितृव्यो भ्राताचा नैनामध्या पयेत्परः।

स्वगृहेचैव कन्यायाः भैक्षचर्या विधीयते॥

वर्जयेदजिनं चीरं जटा धारणमेवच।"

अर्थः—इन्हें पिता, चाचा या भाई पढ़ावें। अपने गृहपर हो रहें, और भिक्षा चर्या अन्य गृहमें न करें, अजिन, चीर और वल्कल धारण, तथा जटा जूट बांधना छोड़ दें।

इस ग्रन्थके लेखककी शब्द भङ्गी स्पष्ट बता रही है, कि इस लेखकके समय भी स्त्रियां जङ्गलमें गुरु गृहमें पुरुषोंकी तरह ही जटा जूट, और वल्कल पहन भिक्षा मांगकर पढ़ती थीं, जिसका यह विरोध कर रहा है। सम्भव है उस समय दस्यु दलोंके उपद्रव ही लेखकको इस नियमके न चलानेको बाध्य करता हो। जैसे

आजके अंग्रेजी स्कूलोंमें सह शिक्षाका विरोध प्रत्येक समाज हितैषीको करना पड़ता है। मैं भी अपना विचार इसी श्रेणीमें रखता हूं, किन्तु यदि स्त्रियोंका गुरूकुल शहरके विषैले वातावरणसे दूर, पृथक अध्ययनके प्रबन्धमें हो, तो आज भी स्त्रियों को अति शीघ्र यज्ञोपवीत देकर, ब्रह्मचारिणी वेषोंमें एवं गुरू गृहमें, अवश्य अध्ययन कराना चाहिये। इनमें यमका भी विरोध नहीं, ओर समाजका कल्याण भी अवश्यम्भावी है।

उत्तर रामचरितमें भवभूतिने आत्रेयीके वेदान्ताध्ययनका वर्णन* किया है। कालीदासने भी इन्दुमतीके स्वयम्बरमें उपस्थित समस्त राजवंशोंका सुनन्दाके मुखसे वर्णन कराते हुए, स्त्री-शिक्षाका पूर्ण परिचय दिया है।

अभिज्ञान शाकुन्तलके अन्दर भी शकुन्तलाके आश्रम परिचर्या आदिका वर्णन बड़े ही उत्तम ढङ्गसे किया गया है। ऋग्वेदमें अनेकों सूक्तोंकी द्रष्टी स्त्रियां मिलती हैं। ऋषियोंके समान वेद भगवान्का आविर्भाव इनमें भी हुआ है। उपनिषदोंमें भी जनककी सभामें और गार्गीकी मध्यस्थतामें ऋषियों के शास्त्रार्थकी चर्चा आती है।

गोभिल गृह्य सूत्र तथा मन्त्र ब्राह्मणके देखनेसे पता लगता

---

*अस्मिन्नगस्त्यः प्रमुखाः प्रदेशे, भूयांस उद्गीथ विदोवदन्ति। तेभ्योऽधिगन्तुं निगमान्त विद्यांवशिष्ठ पार्श्वादिह पर्यटांमि ॥

है, कि वस्त्र पहनी हुई, और यज्ञोपवीतिनी† कन्याको विवाह मण्डपपर भावी पति ले आवे। यहांपर यज्ञोपवीतिनी शब्द साफ बता रहा है, कि स्त्रीको यज्ञोपवीत धारण करना आवश्यक हैं। इस तरह इस सम्बन्धमें और भी बहुतसे प्रमाण दिये जा सकते हैं, किंतु विशेष विस्तार इस ग्रन्थके लिये उपयुक्त न समझकर मैं इसे अब यहीं समाप्त करता हूं। आशा है भारतमें पुनः महिलाओंको धर्माधिकार मिलेगा, और उपवीत वे पहनेंगी।

ओश्म् शांति



† गो० २।१।१९-२०। म० ब्रा० १।१।७।

शूद्र और उपवीत

आज इस विगड़े भारतवर्षमें आये दिन शूद्र और सवर्ण विचारका द्वन्द चलता रहता है। इस सम्बन्धमें भारतीय इतिहास और सामाजिक तात्विक धाराको नहीं समझ पाना ही विवादकारियोंका एक मुख्य विनिमय है। प्लक्ष द्वीपमें शूद्रके लिये सत्पङ्ग, शाल्मल द्वीपमें ईयुन्धर, कुश द्वीपमें कुलक, शाक द्वीपमें मन्दग, और अनुव्रत, तथा क्रौञ्च द्वीपमें सेवक, (पुष्कर द्वीपमें वर्णव्यवस्था न थी) आदि संज्ञायें थीं। भारतमें शूद्र, पादज, अन्त-जन्मा, द्विज-सेवक, भृत्य, और उपासक आदि कहे जाते हैं।

भारतवर्षमें गुण कर्मसे ही वर्ण निरूपित था। इसकी विवेचना मनुष्य तक ही सीमित न थी। भारतीय आर्योंने वर्णों (अक्षरों) में भी वर्ण व्यवस्था लगाई है। काठों (लकड़ियों) के अन्दर भी उसके गुण कर्मानुसार वर्णव्यवस्थाका पृथक्करण था। इस प्रकार सर्वत्र वर्ण व्यवस्था थी। आजका जिस प्रकार प्रथम श्रेणी (First Class), द्वितीय श्रेणी (Second Class), तृतीय श्रेणी (Third Class), और

साधारण (Common) श्रेणो शब्द सर्वत्र व्यवहारमें आता है, ठीक उसी प्रकार पुराने समयमें भी आर्य लोग बड़े ही उत्तम ढङ्गसे वर्ण-व्यवस्थाका पृथक्करण किये थे।

उपरोक्त श्रेणी विभागके अनुकूल ही पुराने भारतमें ब्राह्मण (First), क्षत्रिय (Second), वैश्य (Third), और शूद्र (Common), वर्ण माने जाते थे। उस समय भी इसी शब्दका सर्वत्र व्यवहार होता था। गुरूकुलमें जो छात्र पहले जाता था, उसे उपवीत (Admission या included) देकर उस चिन्हसे यह सूचित किया जाता था, कि ये गुरूकुल (School and college) में पढ़नेवाले छात्र हैं। बस इसी चिन्ह रूपमें यज्ञोपवीत (to make a mark of the Gurukul boy) का धारण था। पीछे जो छात्र प्रथम श्रेणीमें पास करता था, उस श्रेणीको ब्राह्मण श्रेणी कही जाती थी। द्वितीय श्रेणीको क्षत्रिय श्रेणी, और तृतीय श्रेणीको वैश्य श्रेणी, कही जाती थी। जो फेल करता था, वह जहांका वहीं (अर्थात् शूद्र) रह जाता था। पुनः उसके विकाशके लिये, उसे समाज के ही वातावरणमें रक्खा जाता था। जब वह किसी उच्च कामके लायक नहीं हो सकता, तो उसके भरण-पोषणार्थ जो काम दिया गया, वही सेवा कहलाती थी। यह श्रेणी शुद्ध मंत्रादि उच्चारण करनेमें असमर्थ थी, अतएव इन्हें आर्य-समाजान्तर्गत रखनेमें बडी बाधा होनेपर भी उस समयके जन-नायकोंने इन्हें मन्त्र वर्ज्य संस्कार आदि करनेका अधिकार प्रदान

किया।‡ यही है साम्यवाद, और विवेकपूर्ण समाज सेवा। इस श्रेणीको समाजान्तर्गत रखनेका मुख्य दो लक्ष्य प्रतीत होता है। समाजके साथ रहनेसे भविष्यमें इनकी बुद्धिका विकाश, और सभ्यताका चिरन्तन सम्बन्ध, दूसरा लक्ष्य था कि मूर्ख होनेके कारण (बुद्धिकी कमती), कहीं ये दुर्दान्त होकर हीन पथावलम्बी न होने पावें। इसीसे ⁂मनुने स्पष्ट आज्ञा दी है, कि राजा विशेष यत्नसे वैश्यको और शूद्रको अपने अपने धर्ममें नियुक्त रक्खें, क्योंकि उक्त दोनों वर्णोंके कर्त्तव्य च्युत होनेसे जगतमें नाना विश्रृङ्खलायें उपस्थित होती हैं। †विष्णु संहितामें लिखा है कि शूद्र श्रेणी भुक्त मानव विशेषकर शिल्प कार्यमें लगें। धर्म उपार्जनार्थ ही ये सब द्विजोंकी सेवा करें।

शतपथ ब्राह्मणने तो सेवाको तपस्या कही है, और लिखा है, कि शूद्र तपस्याके लिये ही है। बात वास्तवमें यह ठीक है, कि सेवा धर्म वहुत ही कठिन है। महाभारतके पढ़नेसे पता चलता है, कि महाराजा युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञमें श्रीकृष्ण महाराजकी प्रथम अर्चना इसीलिये हुई, कि वे उस यज्ञमें

---

‡ "शूद्रमपि कुलगुण सम्पन्नं, मन्त्र वर्जमनुपनीतमध्यापयेत्"। श० १,१,६६, महा० १६,१५८,। वराहमि० सं० ५,५६, ३२,५६,।६,१३,१२,१८॥।

⁂मनु सं० १०।४१, सु० १४ देखें।

† वृत्तयः शूद्रस्य सर्वशिल्पानि, धर्मशूद्रस्य द्विजाति शुश्रुषा। वि० सं० अ० २।

ब्राह्मणोच्छिष्ट पत्तोंको फेंक देते थे। इस प्रकार प्रायः यह निःसंकोच कहा जायगा, कि सेवा धर्मके ही बलपर सभी व्यक्ति महाव्यक्तियोंमें परिणत हुए हैं। चाहे वह किसी तरह के हों।*

आपस्तम्बीय धर्मसूत्रमें लिखा है:—वैश्य अनिष्टकारक है, और शूद्र आरोग्य है। वस्तुतः शूद्र यदि संसारमें नहीं हो तो यह संसार रोगका घर हो जाय। दूसरे पक्षमें स्थूलवाद यह भी है कि शूद्र समनिरोग शरीरके आज हमारे मनिषीगण नहीं दीखते। नहीं कहा जा सकता है कि पहलेके भी विद्या-व्यसनी इसी प्रकारके थे या नहीं। तीसरे पक्षमें यदि इस सूत्रको सर्वसाधारण अर्थमें ग्रहण किया जाय, तो शूद्र बृतिका अर्थ होगा शरीरकी स्वच्छता, और यही वृति प्रत्येक जीवमात्रके लिये आरोग्यदायिनी है।

उपर्युक्त प्रमाण—सरणी तथा, युक्तिवादोंके ऊपर ध्यान देनेसे विश्वास होता है, कि आज जिस अर्थ और भावमें समाज शूद्रको गिनता है, वह प्राचीन कालमें नहीं था। उस समय शूद्र श्रेणी सहृदयतापूर्ण विकाशसे उन्नत, आरोग्य और श्रृङ्खलित थी, इस श्रेणीसे सबको प्यार था। इससे समाज श्रृङ्खलित रक्खा जाता था, तथा इन्हें भी उन्नति करनेका पूर्ण सुअवसर दिया जाता था। इनके योग्य हो जानेपर इन्हें उपवीत दे दिये जाते थे। अलमिति ॥

* "तपो वै शूद्रः", श० १३,६,२।१०॥ १,४,१४,२८-२६।

मेखला

मेखला शब्द=मी धातुसे "मीयते प्रक्षिप्यते काय मध्य भागे इति"इस प्रकार संस्कृत विग्रह करनेपर पाणिनीयके "मि संज्ञायां खलः गुणश्च स्त्रियां टाप्" इस सूत्रसे आप् प्रत्ययकर सिद्ध होता है। यह मूञ्जकी रस्सी बनाकर यज्ञोपवीतके समय (पहले *यज्ञोपवीतकी ही तरह तीन गुणमें) पहनी जाती है। इसमें एक और भेद है, जो अत्यन्त प्राचीन समयसे ही चला आता है। उस भेदके सम्बन्धमें गृह्यसूत्रादि कर्मकाण्डके ग्रन्थोंमें लिखा है:—मेखला† ब्राह्मणको मूञ्जकी, क्षत्रियको उर्बी धनुसंज्ञक, तृण (घास) की, और वैश्यको पाट (सन)की, पहननी चाहिये। आगे फिर एक निर्वाहार्थ बचन है, कि जहां मुञ्ज या तृण नहीं मिले, वहां कुशको ‡उस स्थानपर ग्रहण करना चाहिये। क्षत्रियके

---

* यह मत गृह्यकारोंका है।

† "मौञ्जी त्रिवित्समा श्लक्ष्ना, कार्या विप्रस्य मेखला।
क्षत्रियस्यतु मौर्वी मा वैश्यस्यशण तान्तवी॥"
—संस्कार तत्व।

‡ "मौञ्ज्याभावे कुशेनाहु ग्रन्थिनैकेनच त्रिभिः॥"
—कौर्म० उप, ११ अ०

लिये उर्वीके स्थानपर "वल्कल", (वृक्षकी छाल) वैश्यके लिये सनके स्थानपर "ऊन" की मेखला हो सकती है।

मेखला धारण करनेकी विधिमें जो एक मन्त्र संस्कारके अन्दर "मन्त्र ब्राह्मण"का आता है वह यहां विशेष रूपसे जानने योग्य है:—

"ओ३म् इयं दुरुक्तं परिबाधमाना, वर्णं पवित्रं पुनतीम आगत्। प्राणापानाभ्यां बलमादधाना स्वसादेवी सुभगा मेखलेयम्।"

—मं० ब्रा० १।१।२७॥ पा० गृ० २।२॥

अर्थः—यह मेखला दुष्टोंके बुरे शब्दोंको दूर हटाती हुई, वर्णको शुद्ध करती हुई, तथा प्राण और अपानके बलको बढ़ाती हुई, सौभाग्यवती बहिनके समान मुझे प्राप्त हुई है।

मनु महाराजने भी तीनों वर्णोंके लिये भिन्न-भिन्न वस्तुओं-की मेखलाका आदेश दिया है, किन्तु ये मेखला न कह इसे सूत्र कहते हैं।* आन्हिक तत्वकार श्रौत स्मार्त्त कर्ममें दो जनेऊ और अंगोछेके अभावमें भी एक, अर्थात् ३ उपवीत धारण करनेको लिखते हैं।

---

* "कार्पासमुपवीतंस्याद्विप्रस्योर्ध्ववृतं त्रिवृत्। शणसूत्रमयं राज्ञो वैश्यस्याविकसौत्रिकम्॥" २।४४॥ "यज्ञोपवीते द्वे धार्ये श्रौते स्मार्तेच कर्मणि तृतीयमुत्तरीयार्थं वस्त्राभावेऽति दिश्यते।

अब यहांपर ध्यान रखनेकी बातें यह हैं, कि मेखला शब्द ऋग्वेदके अन्दर कहीं भी पठित नहीं है, और अथर्व*वेदके अन्दर इसके पाठ सुस्पष्ट, एवं अनेक बार पाये जाते हैं। ब्राह्मण ग्रन्थोंमें शतपथ अपना एक खास स्थान रखता है, और यह कहता है कि—†"मेखला शाणीकी होती है।" यहांपर शाणी तृणके अर्थोंमें ही विशेष जंचती सी मालूम पड़ती है। दूसरे स्थलपर यही ब्राह्मण पुनः लिखता है, कि "वह मेखला शरीर के मध्य-धारणकी जाती है। वह आत्माको तेज देती है, तथा जीवन समाप्ति पर्य्यंत तक रहती है।"

अथर्व वेदने एक स्थानपर तो इस मेखलाके विषयमें यहांतक लिखा है कि:—

"ब्रह्मचारी समिधा मेखलया श्रमेण लोकांस्तप सा पिपर्ति।"

—अ० ११-५, ४।

---

*यांत्वांपूर्वे भूतकृत ऋषयः परिवेधिरे, सात्वंपरिष्वजस्वमां दीर्घायुत्वाय मेखले।

—अ० ६-१३४, ४५। और ६-१३३-४॥११,५।४।

† सा (मेखला) वै शाणी भवति। श०६-३-८।२-॥ तथा८ए वैष एतां (मेखलां) मध्येन आत्मानं ऊर्जं धत्ते समाप्तितया समाप्नोति। श० ३-२-१-१०॥।

अर्थ :—ब्रह्मचारी, समिधासे, मेखलासे, श्रम, और तपसे संपूर्ण लोकोंको भर देता है।*

वाल्मीकि रामायण कारने मेखलाको (श्रोणीसूत्रेण महता मेखलेन सुसंवृतः) द्वारा श्रोणी-सूत्र (कटि-सूत्र) कहकर अच्छी प्रशंसा की है। (रा० ५, २५, २६)

अब यहांपर विवेचनीय विषय यह है कि इसे कौन बांधे ? क्योंकि मेखला बालकको आचार्य बान्धे, और "इयं दुरुक्त" इस मन्त्रको बालक पढ़े। यह मत वासुदेव, मुरारी मिश्र, जयराम, और हरिहरका है। गदाधर आदि इस मतके विरुद्ध हैं। मन्त्रके अर्थकी आलोचना करनेपर प्रतीत होता है कि मन्त्र असलमें बालकके ही पढ़नेका है। किन्तु शाङ्खयायन† आपस्तम्ब, भारद्वाज, और हिण्यकेशि आदिके देखनेसे पता चलता है कि यह मन्त्र आचार्य द्वारा शिष्यके पढ़नेका है। पं० सत्यव्रतजी ने गोभिल (२।१०) में स्पष्ट इसे बालकों केलिये पढ़नेका विधान किया है। स्वामी दयानन्दजीने दोनोंको पढ़नेका आदेश दिया है। होना भी ठीक यही चाहिये।

---

* मेखला शब्द और भी कहां कहां आया है:—

तै० स० ६,२,२,७। शरमयी १,३,३,५। श० ३, २,१,१०।६,२, २,३६।४,४,५,२। क० २३;४।२४।६। का०गृ० ७,३,२६। ४,५,६। ८,२; ४। १०,८,१२। मेखलां वध्नीते, पार०गृ० २,२,६। गो० गृ०२,१०, ३२। कौष० गृ० ४७।५७। आश्व गृ० १,१९,१२ सां० गृ० २१।

† शा० २।२।१। आ,११,२,३-१, भार०१।९(Lyeden 19-13) हिर० १-४-४ (Vienna 1889)

मेखला के गुण

भारतवर्षमें मेखलाको सामान्यतया करधनके रूपमें माताएं नये उत्पन्न हुए बच्चोंको बांधती हैं। भागलपुर जिलेमें तो बुढ़े लोग भी इसको सदा पहनते हैं। कमर कसनेसे आंत (अन्त्र वृद्धि) उतरनेका रोग शांत होता है। आज भी आंतके रोगी डाक्तरोंकी सलाहसे रबड़ या कच्च कड़ेके बने पेटीको रोग निवारणार्थ पहनते हैं। शायद पाजामेंका इजारबन्द इसी संस्कारके कारण चला है, सम्भव है जब फ़ारस देशके और यूनानके लोग आर्य धर्म-छोड़ दिये, तो मेखला न बांधकर उसकी जगह इजारबन्दको ही व्यवहारमें लाये हों ? पाश्चात्य देशोंमें भी जो कमरके उपर पेटी कसनेकी प्रथा है, उसका समर्थन स्वास्थविद् इसी फायदाको दिखाकर करते हैं।

संस्कार चन्द्रिकाकर पं० आत्मारामने लिखा है कि "जब यात्राको जाना हो, या बलका काम करना हो तो कमरको कस लेना चाहिये, इससे आंतोंको उछलने आदिका भय नहीं रहता। कटिपर दबाव रहनेसे प्राण तथा अपानकी गति ठीक रहती है।"

मेखला बांधनेमें अथर्व वेद निम्न फायदा कहते हैं::—

"आहुतास्यभिहुत ऋषीणामत्यायुधम्। पूर्वा व्रतस्य प्राश्नती, वीरघ्नी भव मेखले॥ श्रद्धया दुहिता तपसोधिजाता, स्वसा ऋषीणां भूतकृतां बभूव। सानो मेखले मतिमाधेहि मेधामथोनो,धेहि तप इन्द्रियं च। —६,१३३,२-४॥

अर्था :—हे मेखले! तू आहुतिवाली है, तू अपना ओर आहुती संपात करती है। तू ऋषियोंका शस्त्र है, व्रतके पहली भागको लेनेवाली है, सो तू वीरोंको (शत्रुको) मारनेवाली होवो॥

यह मेखला श्रद्धाकी कन्या, तपसे उत्पन्न हुई, जीवोंको बनानेवाले (उत्तम शिक्षा द्वारा) ऋषियोंकी बहन है, अतएव ए मेखले! हमें बुद्धि (विचार), मेधा (समझ या ज्ञान)। दे, और हमें तप तथा इन्द्रका बल दे। संस्कार चन्द्रिका कारने मेखलाको पीठकी ओर बांधनेका मत निर्णय किया है। उनका हेतु है कि पीठकी ओर इसके गड़नेसे वालक करवट सोयेगा, और इससे स्वप्नदोष द्वारा वोर्य क्षोण नहीं होंगे। मैं भी अपनो बुद्धिके अनुभवसे करवटका सोना वीर्य रक्षार्थ उपयुक्त समझता हूं।

प्रसिद्ध मन्त्र-मीमांसा

"यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात् , आयुष्यमग्र्यं प्रतिमुञ्च शुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः ॥ यज्ञोपवीतमसि यज्ञस्यत्वा यज्ञो-पवीतेनोपनह्यामि ॥"

अर्थ :—बहुत ही शुद्ध जो यज्ञोपवीत प्रजापतिके साथ प्रकट हुआ है, वह आयुके लिये हितकर और श्रेष्ठ है। इसको तू पहन ? यज्ञोपवीत तेरे लिये बल और तेज हो। तू यज्ञो-पवीत है। यज्ञके यज्ञोपवीतकी तरह तुझे पहनता हूं।"

इस मन्त्रसे कुछ बातें नयी सोचनेको मिलती हैं, वह यह, कि प्रायः सभी यज्ञोपवीतकी संस्कार पद्धतियोंमें इस मन्त्रको पारस्कर गृह्यका मानते हैं, किन्तु आश्चर्य है, कि यह मन्त्र पारस्कर गृह्यसूत्रके मूलमें नहीं है। पीछे आवश्यक जान टीका कारोंने इस मन्त्रको यहां डाल दिया है। इसी प्रकार खादिर, आपस्तम्ब, भारद्वाज, हिरण्यकेशि, गोभिल, आश्वलायन, आदि प्रायः प्रसिद्ध किसी भी गृह्य सूत्रोंके मूलमें यह मंत्र नहीं आया

है। अथर्व वेदियोंकी जो पद्धति पृथक देखनेको मिलती हैं, उसमें केवल "ॐ यज्ञोपवीतमसि यज्ञस्य यज्ञोपवीतेनो-पनह्यामि" इतना ही मन्त्र यज्ञोपवीत धारणका है। प्रसिद्ध "यज्ञोपवीतं" मन्त्र नहीं मिलता । पारस्करके भाष्यकार गदाधर, विश्वनाथ, तथा जयरामने* देशाचार और अन्य आचार्योंके अविरोध होनेसे शाखान्तरीय कह कर उक्त (यज्ञो-पवीतं) मन्त्रसे उपवीत देनेका विधान लिखा है। पारस्करके पुराने भाष्यकार कर्काचार्यने प्रसिद्ध यज्ञोपवीत धारण करनेको तो अवश्य लिखा है, किन्तु मंत्रके विषयमें चुपचाप हैं। सबसे अधिक आश्चर्यका विषय तो यह है, कि इस मंत्रके ही आधार पर महान् अन्वेषक स्व० लो० तिलकने 'ओरियान' (Orion) ग्रन्थ लिख कर प्रजापतिसे मृगशिरा-अर्थ किया है, किन्तु वे भी इसके मूल तत्वपर कुछ नहीं लिख सके।

इस मंत्रका मूल आधार किस ग्रन्थसे है, यद्यपि यह बात अभीतक निश्चित नहीं हो पायी है, किन्तु है यह अवश्य किसी अन्य शाखीय गृह्य सूत्रोंका ही। यह सर्व विदित है कि वर्त्तमानमें जब अनेकों ग्रन्थ और अनेक प्रसिद्ध वेदोंकी शाखायें हमें उपलब्ध नहीं हो रही हैं, तो फिर इस प्रश्नपर विशेष विचार क्या दर्शाया जा सकता है। रही समस्या यह, कि इसे व्यवहारमें लाया जाय या नहीं? इन प्रश्नोंका छोटा

---

* तत्राचारविधा उपशाखान्तरीयोऽपिमन्त्रोगृह्यते ॥—पा० भा०

सा उत्तर यह है कि यज्ञोपवीतके धारण करनेवाले हिन्दुओंके माननीय और प्राचीन कर्मकाण्डके भक्त आचार्योंने जब इसके ग्रहणका स्पष्ट विधान दिया है, तो फिर इस मंत्रको उपवीत धारणके समय प्रयोग करनेमें अवश्य कोई शङ्का, और हिच-किचाहट न होनी चाहिये। पौराणिक मतानुयायी हिन्दुओंके लिये हरिहर, गदाधर, तथा जैराम, आदिकी बातें माननी शिष्टता होगी, और इनके मतपर न चलनेवाले आर्य समाजी, आस्तिकोंके लिये भी स्वा० दयानन्दजीने संस्कार विधिमें इसके विधानको स्पष्ट दे दिया है। फिर भी यह निश्चित है, कि इस मन्त्रको जिस रूपमें चलता है, चलाना ही उपयोगी है।

\+ + +

ऊपरके समन्वयसे सहसा एक और विचार सुगमतया उपस्थित होता है, कि जिन शाखावालोंने इस मन्त्रको नहीं दिया वे क्या करते थे ?

इस विषयमें जहांतक मैं समझ पाया हूं, कि यज्ञोपवीतके चिन्ह स्वरूप जो सूत्र माध्यन्दिनी तथा कौथमी आदि शाखा-वाले पहनते थे, वह "मेखला" ही है। आज जो यज्ञोपवीतके साथ मुञ्जादिकी मेखला संस्कारके समय पहनाई जाती है, वह केवल मंडपके समयमात्रके लिये ही अनुष्ठित होता है। उसकी उपयोगिता नहीं प्रतीत होती। प्राचीन समयमें आय अवश्य अभीके जैसे सूक्ष्मसे सूक्ष्म* कलानिपुणताका परिचायक

---

* अथर्व का० ६। सू० १३३। मं० १-४।

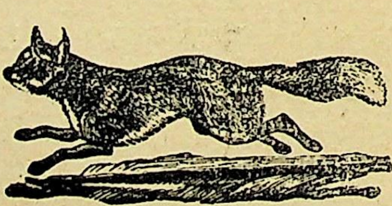
कपास (रूई) की डोरीको इस स्थानमें नहीं लगाते थे। उन्हें मोटी, मुलायम, सब जगह सुगमतासे मिलनेवाले, जङ्गलमें भी शीघ्र पा जानेवाले, मुञ्ज, सन, कुश, काश, प्रभृतिकी मेखला ही धारण करना सम्भवतः विशेष रुचिकर था। मंत्र भी हमें देखनेमें ऐसे ही आते हैं। अथर्व वेद सभी वेदोंसे इस विषय में स्पष्ट अधिक हुआ है। उसके अन्दर जो हमें मेखलाके विषय का उपदेश देखनेको मिलता है, उसमें अन्य और किसी विधान का लक्ष्य नहीं है। जो लोग उपवीत (कपासवाला), मेखला (मुञ्जादिकी), और अजिन धारण ब्रह्मचारीको एक साथ कराते हैं, उनके मतमें इसकी पृथक पृथक उपयोगिताके लिये कोई विशेष विधान नहीं दिखाई देता। सम्भव है, मेखलाके बाद अजिन और कपास-सूत्र मानव बुद्धिकी रुचि भिन्नतासे उत्पन्न होनेपर, पीछे प्राचीनत्व अवहेलना दुस्कर होनेके कारण तीनों विधान विधातव्य हो गये। महर्षि दयानन्द जीने उपवीतको कन्धेपर और मेखलाको कटिमें बांधनेका विधान कर दोनों बातोंको भिन्न भिन्न उपयोगमें कर दिखाया है, यह क्रिया सुन्दर और स्वास्थ्य तथा बुद्धिके अनुकूल भी हुई है।

अलग अलग वस्तुओंकी मेखला भिन्न २ वर्णोंके लिए हैं, जिसमें बच्चोंकी आपसमें प्रतिद्वन्दिता रहे, और एक दूसरेसे बढ़कर पढ़ने तथा आगे योग्य बननेमें परिश्रम करें। साथ ही बाहरवाले जान भी सकें की किस श्रेणीमें कौन छात्र उत्तम, मध्यम, और साधारण है। प्रतिद्वन्दिता पढ़नेमें बहुत उपयोगी

होती है। यह निश्चित सिद्धान्त है, कि जिसके जितने उन्नत अवस्थावाले प्रतिद्वन्दो हैं, वह भी उससे बढ़कर हुआ है, नहीं तो सामान्य होनेमें तो कुछ संशय ही नहीं रहता।

इन मेखला आदियोंके आयुर्वेदानुकूल गुण भी बड़े अच्छे हैं जैसेः— मुञ्ज—मधुर, कषाय, शीतल, त्रिदोषनाशक, और वृष्य हैं। दर्भः—त्रिदोषनाशक, मधुर, कषाय, और शीतल है। शणः—खट्टा, कषेला, मलगर्भ, रूधिर शोधक, बमनकारक, वात कफ नाशक, और अङ्गकी जँभाईका नाश करनेवाला है। ऊन आदिके भी गुण इसी तरहके हैं। इस प्रकार इन सब चीजोंके बहुत सुन्दर और लाभदायक निर्वाचन हुए हैं। इनके धारणसे बच्चोंकी बुद्धि विकाशके साथ साथ शरीर-गठन और वीर्य-रक्षा भी होती रहती है। इन सबोंका यथाविहित धारण उपनयनके समय अवश्य कराना चाहिये।

शिवमिति



ब्रह्म-सूत्र-नामकी विशेषता

ब्रह्म-सूत्र—यह शब्द संस्कृतका सामासिक है। इस का संस्कृतमें वाक्य इस तरह बनता है, यथा :—

"ब्रह्मणि वेद ग्रहणकाले, उपनयन समये धृतंयत् सूत्रमिति ब्रह्म सूत्रम् ॥"

सृष्टि-प्रवाहका संरक्षण करना प्रकृतिका प्रधानतम नियम है। इस संरक्षणमें ब्राह्मी शक्तिका उपयोग ही एक-मात्र प्रधान शस्त्र है। ब्राह्मी शक्ति सहस्त्र सहस्त्र सृष्टिका विस्तार करती है, फिर वैष्णवी शक्तिके पालन पोषण करनेवाली क्रियासे सृष्ट पदार्थ पुष्ट होता है, और रूद्रसे सृष्ट पदार्थोंका संहार होता है। इन तीन शक्तियोंके भिन्न भिन्न विभाग हमारे शास्त्रीय ग्रन्थोंमें अनेक रूपकों द्वारा सिद्ध किये गये हैं। उत्पत्ति और विस्तृति, ब्राह्मि और वैष्णवी शक्तिकी सनातनी क्रिया है। वेदान्त दर्शनमें लिखा है:— ब्रह्म ही एकमात्र नित्य वस्तु है। ब्रह्मके अतिरिक्त अज्ञानादि समस्त जड़-समूह अवस्तु

और अनित्य है*। वेद भगवान् भी कहते हैं: – जिससे इस भूत समूहकी उत्पत्ति होकर स्थिति हुई है, और जिसमें यह लीन होता है, वही ब्रह्म है।† इसीसे यज्ञोपवीत भी संसारमें नियम, शृङ्खला-विकाश, और ज्ञानका प्रवर्त्तक होनेसे द्विज चिन्ह ब्रह्म-सूत्र कहलाया। दूसरी बात यह है कि ब्रह्म नाम वेदका है। वेद हिन्दू जातिका ही नहीं, अपितु समस्त ब्रह्माण्डके विज्ञानका दिग्दर्शक हैं। इस नामसे ही (ब्रह्म-सूत्र) उपवीतका परिचय मनुष्य मात्रके लिये आवश्यकीय प्रतीत होता है। रोमन कैथोलिक (इसाई) और पारसी लोग यद्यपि यज्ञोपवीत नहीं कहते, फिर भी इसीके अनुरूप एक पट्टा धारण करनेसे इसका अपभ्रंस रूप अवश्य पाया जाता है। पादरी हमारे देशके ब्राह्मणों की ही तरह ईसाई धर्ममें माने जाते हैं, और रोमन कैथोलिक पादरियोंके झूलते कुर्तेपर लटकता हुआ यह पट्टा बताता है, कि यज्ञोपवीत ये कभी धारण करते थे। वास्तविक बात तो यह है कि ज्ञानी समाजको इसे छोड़ना दुष्कर हो रहा है। "सत्यार्थ प्रकाश" नामक ग्रन्थमें इसे विद्या-चिन्ह माना गया है। वास्तवमें यह नाम इसके विशेष प्रचलित हेतु परक हैं। आज भी हिन्दू

---

* अज्ञानादि सकल जड़ समूहोऽवस्तु, ब्रह्मैव नित्यवस्तु तदन्यखिलमनित्यम् ॥

† यतो इमानि भूतानि जातानि येन जातानि जीवन्ति यत् प्रयन्ति अभिसम्विशन्ति। श्रुति।

समाजमें उपवीत चाहे कोई भी किसी भी अवस्थामें ले, उसे विद्यार्थीके रूपमें होना ही होता है।

यह एक ऐसा बन्धन है जो समाजको वाध्य करता है कि वह अध्ययन करे, गुरूकुलमें रहे, ब्रह्म वेत्ता हो, ब्रह्मकी तरह समाजको उन्नत स्रष्ट करे, अपने विद्या-तेजसे प्रकाश फैलावे; और निरपेक्ष-न्यायकारी होकर संसारमें शांतिकी प्रतिष्ठा करे। ब्रह्मचर्यपूर्वक ब्रह्म-सूत्रधारी *गुरूकुल-वासी विद्वानोंके लिये हमारे शास्त्रकारोंने लिखा है कि इनको रास्तेपर चलते हुए देख राजा भी रास्ता हटकर दे दे।

हजारों अविद्वान् पुरुष यदि एक ओर मत दें और ये स्नातक विद्वान् यदि उन सभी जनसमूहोंके विरुद्ध अपना मत उन सबोंसे अलग दें, तो भा उनके ही मतको ग्रहण करना चाहिये, तथा सहस्त्र मतको छोड़ देना चाहिये। अनुमान होता है कि भारतमें जबतक गुरूकुलमें वास कर ब्रह्मचर्यपूर्वक भारतीय वेदादि शास्त्रोंको पढ़ते थे, तो भारत उन्नत, सुखी, और साम्राज्यशाली था, किन्तु जबसे गुरूको गृहमें रखकर पढ़नेकी परिपाटी यहां चली है, तबसे यह देश रसातलकी ओर ही गया है। उदाहरणार्थ महाभारतके द्रोणाचार्यका नाम लिया जासकता है। द्रोणाचार्य ही सम्भवतः सर्वप्रथम भारतीय विद्वान् थे, जिन्होंने शिष्यके घर वृत्ति लेकर (विद्या-व्यवसाय) पढ़ाना

---

* गुरूकुलका सर्वत्र अर्थ प्राचीन कालके गुरूकुलसे है।

आरम्भ किया था। भीष्मके अनुनय विनय करने और क्षत्रियोंके दान-धर्मकी गति बन्द करनेपर ही, दरिद्रताकी भयानक ज्वाला और अनेक धैर्य तथा धर्म संरक्षणमें कंकाल हो, अगत्या हस्तिनापुरमें ये उड्डीयमान ब्राह्मण विद्यार्थी पढ़ाने लगे। इसका प्रतिफल भारतके लिये बड़ा संहारक हुआ। यहीं तक नहीं अनेक कालके लिये वीर प्रसवा आर्य-वसुन्धरा क्षात्रत्व-तेज एवं विभव विहीना हो गई।

आवश्यकता है आज पुनः ब्रह्म-सूत्रके नामको हम लोग सार्थक करें। इसीसे रामराज्य और हरिश्चन्द्र राज्य संसारमें स्थापित हो सकता है, अन्यथा महाभारत आये दिन देखनेको मिलेंगे ही।'

ब्रह्म-सूत्रके विचारमें एकाध बातें और भी सामने आ पड़ती हैं। जिस प्रकार ब्रह्म-सूत्रसे यज्ञोपवीतका अर्थ बोध होता है, उसी प्रकार और भी कई एक शब्द ऐसे हैं जो इसीके तद्रूप माने जाते हैं, जैसे "ब्रह्म घोष"। इस शब्दसे वेद ध्वनि या वेद पाठका ही भाव ग्रहण किया जाता है। ब्रह्म-दर्शनसे वेदका ज्ञान समझा जाता है। इसी प्रकार "ब्रह्मचर्य" शब्द भी बहुत महत्वपन लेकर उपवीतके साथ जुट गया है।

इस शब्दकी व्युत्पत्ति पाणिनीयने "ब्रह्मनेवेदार्थंचर्यं आचरणीयम्" की है, अर्थात् ब्रह्म शब्दका अर्थ वेदार्थकेलिये आचरण करना माना है। इस अवस्थाको चार आश्रमोंमें सबसे प्रधान माना गया है। यज्ञोपवीत धारण करनेसे पूर्व आचार्यके पास जाकर

बालक कहता है "मैं ब्रह्मचर्य धारण करूं; मुझे उपनीत करो।" पातञ्जल सूत्रमें लिखा है:—

"ब्रह्मचर्य प्रतिष्ठायां वीर्यलाभः"

(सू॰ ३८२)

अर्थात् ब्रह्मचर्यकी प्रतिष्ठा करनेसे वीर्य लाभ होता है। साथ ही, यह भी प्रायः सभी मुख्य आचार्यों का एक सा मत है, कि ब्रह्मचर्या पालन वेदाध्ययनके लिये ही है। †मनु संहितामें इस प्रसंगका उपदेश इस प्रकार दिया है:---उपनयनके उपरांत ही ब्रह्मचर्याश्रम विधेय है। उपनयन होते ही द्विजोंके लिये त्रैविद्यादि अथवा मधु मांस वर्जनादि व्रतोंका आदेश और विधिपूर्वक वेदाध्ययनका भार अर्पित है।

गुरुकुल-प्रवेश की रीति

इस सम्बन्धमें यहांपर अथर्व वेदके कुछ आवश्यक उपदेश और विधानको जान लेना परम आवश्यक है। मन्त्र इस प्रकार हैः—

"आचार्य उपनयमानो, ब्रह्मचारिणं कृणुतेगर्भ-मन्तः। तंरात्रीस्तिस्त्र उदरे विभर्ति, तं जातं द्रष्टुमभि संयन्ति देवाः ॥१॥ इयं समित्पृथिवीद्यौर्द्वितीः-

† मनु २, १४६

योतान्तरिक्षं समिधा पृणाति ॥२॥ पूर्वो जातो ब्राह्मणो ब्रह्मचारी, धर्मंवसान स्तसोदूतिष्ठत् ॥ तस्माज्जातं ब्राह्मण ब्रह्म ज्येष्ठं, देवाश्च सर्वे अमृतेनसाकम् ॥"

—अथर्व ११,३,५,३-४-५ ॥

अर्थात्:— गर्भमें वसकर माता और पिताके सम्बन्धसे जो मनुष्यका जन्म होता है, वह प्रथम जन्म कहा जाता है। दूसरा जन्म यह है कि आचार्य रूप पिता और विद्या रूपा माताके गर्भ में (गुरूकुलमें, स्कूलमें, या कौलेजमें) रहकर एवं विद्याध्ययन कर सफलता प्राप्त करता है, वही जन्म वास्तवमें मनुष्य जन्म है, और इस जन्मको दूसरा जन्म कहा जाता है। जब बच्चे आठवें वर्षसे पाठशालामें जाकर आचार्य (विद्या पढ़ानेवाले गुरूजी) के समीप रहते हैं, तभीसे उनका नाम ब्रह्मचारी अथवा ब्रह्मचारिणी हो जाता है। कारण यह है, कि ब्रह्म वेद तथा परमेश्वर सम्बन्धि ज्ञान और विचारमें छात्र इसी समयसे तत्पर हो जाते हैं। उन्हें तीन रात तक आचार्य (शिक्षक) अपने गर्भ (अन्तरङ्ग) में रखते हैं। इसका अभिप्राय स्पष्ट यों जानना चाहिये कि, तीन रात और तीन दिनतक उस बालकको गुरूदेव अपने विद्यालयके नियम, पढ़नेकी रीति, शिक्षाका उद्देश्य, जो पढ़ा जाय उसपर विचार करनेका ढङ्ग, ईश्वरकी उपासना, विशेष कर्त्तब्य, और तुलना करनेकी रीति बताते थे। तीन

दिनके बाद उस बालकको देखने विद्वान् (शिक्षक गण) लोग आते थे। उन सभी विद्वानोंके समक्ष ही फिर हवन कराकर गुरूदेव उससे प्रतिज्ञा कराते थे। उस प्रतिज्ञाका सारांश यह है:—"जो ब्रह्मचारी, पृथ्वी, सूर्य और अन्तरीक्ष इन तीनों प्रकार की विद्याओंको पालन और पूर्ण करनेकी इच्छा करता है, वह इन समिधाओंसे पुरुषार्थ करके सब लोकोंको धर्मानुष्ठानसे पूर्ण आनन्दित कर देता है। जो ब्रह्मचारी पूर्ण पढ़के ब्राह्मण होता है वह धर्मानुष्ठानसे अत्यन्त पुरूषार्थी होकर सब मनुष्योंका कल्याण करता है।" फिर उस पूर्ण विद्वान् ब्राह्मण को सब लोग देखनेके लिये आते हैं, क्योंकि वह अमृतसम परमेश्वरकी पूर्ण भक्ति और धर्मानुष्ठानसे युक्त होता है।

उस प्राचीन कालमें बालकको तीन दिनोंतक गुरूके अपने पास रखनेसे, बालक प्रत्यक्ष अनुभव यह भी कर लेता था, कि गुरू ठीक मेरे पिताके ही समान प्रेम करनेवाले हैं। विधियां भी कुछ इस ढंगकी हैं, जिससे ऐसा होना स्वाभाविक भी है। बच्चे क्रीड़ा प्रिय होते ही हैं। इस समय इन्हें नये-नये पदार्थोंकी अच्छी रुचि होती रहती है। जब आचार्य उसे नया वस्त्र, यज्ञोपवीत, मेखला, दंड, झोला, और पुस्तक हाथमें देकर प्रेमसे सजाता है, तो स्वभावतः कौतुक प्रिय बच्चे इस साज और बान-ठानसे बिमुग्ध हो उस गुरूसे दूध और बताशोंकी नाई मिल जाते हैं। फिर बालक रह रह कर उन सभी चीजोंके विषयमें नाना प्रकारके विचित्र विचित्र प्रश्न करते हैं, और

आचार्य इसी सुअवसरपर उसे धीरे-धीरे यज्ञोपवीत सम्बन्धी सभी आचार, महत्व और उद्देश्योंको बता देते हैं। इस समयका उपदेश बच्चोंके हृदयमें पूर्णतया चिमक जाता है, और वह अमिट हो जाता है। इस संस्कारके अन्दर दंडादि धारण के उत्तरमें आचार्य बालकोंको बड़े सुन्दर ढंगसे आत्मनिर्भरता (Self reliance) और निर्भिकता (Fearlesses) की शिक्षा बड़े ऊंचे और सुन्दर ढंगसे देते हैं। ऋषियोंका यह समय भारतमें अभी नहीं रहा, पुराने समयकी भारतीय सभ्यता भी अभी नहीं है। भारतके वह शानदार शासन; राज्य और वैभव नहीं हैं, अतएव आज सचमुच पुराने समयके वे उच्च, स्वतन्त्र, साम्राज्यवान्, और सभ्यताका बेजोड़ गठन करनेवाली शिक्षा प्रणालियां, एवं जीवन रचनायें अभी आडम्बरसा मालूम होता है। आजका विकृत मस्तिष्क, परतन्त्रतामें उत्पन्न विचार, और अन्य सभ्यता प्रिय हृदय, इससे अन्यमनष्क है। उसे ये सब कर्म जंगली, गंवार, और बुद्धिवाद हीन दिखाई पड़ते हैं। कारण, इन्हें बुद्धि नहीं है। यदि रहती तो हिन्दू शास्त्रोंके सर्व मूल सिद्धान्तानुकूल अदीनताको स्वीकार करते हुए भी, अपनेको मनुष्य कहलानेका दम वे नहीं करते, अतएव हमें इनके उक्त रुचिपर विशेष विचार करना व्यर्थ समझ पड़ता है।

संसारकी उन्नति इतिहासपर निर्भर करता है। प्राचीन उन्नतशील-प्रणालियां किसी भी जातिके लिये साधनका गौरवास्त्र है। गत साहित्य, जीवनको स्फूर्त करता है। मेरा

संस्कार बिल्कुल प्राचीन पद्धतिसे ही चले, यह ध्येय प्रत्येक जातिहित कामीका पूर्ण करना कर्त्तव्य है। आज मैं भले ही दूसरी प्रेरणा और संस्कारसे घर्षित हो, इसकी उपयोगिता न समझ सकूं; परन्तु सम्भव है, यदि कभी पुनः उसी पुराने युगोंकी तरह भारत-साम्राज्य संसारमें प्रतिष्ठित हुआ, तो इस संस्कार-पद्धतियोंकी आवश्यकता अवश्य होगी। उक्त महत्वको देखते हुए कर्त्तव्य जान पड़ता है कि हम लोग पूर्णतया विना किसी भी परिवर्त्तनके "संस्कार-विधि" की रक्षा अवश्य सुयत्नके साथ करें?

॥ सर्वाआशा ममंमित्रं भवन्तु ॥



कुछ रूढ़िवादें

रूढ़ि शब्दका अर्थ ही है, जो यौगिक और सिद्ध शब्द न हो, तथा एक अपना स्वतन्त्र अर्थ रखता हो। इसी कोटीमें कुछ मध्य कालसे यज्ञोपवीतके सम्बन्धमें भी भिन्न भिन्न मत चल पड़े हैं। मैं उन्हीं मतोंका यहां कुछ उल्लेख करूंगा। किसी किसी स्मृतियोंमें लिखा है कि यजुर्वेदियोंके यज्ञोपवीतका प्रमाण मस्तकसे नाभीतक होना चाहिये†। सामवेदियोंके बाएं कन्धेसे दाहिने हाथके अंगूठे तक होना चाहिये।

उपवीत नामकी सार्थकता।

यह पवित्र यज्ञ-सूत्र बांयें हाथके ऊपरसे दाहिने हाथकी ओर लटका रहता है, इसीसे इसका नाम "उपवीत" है।‡

---

† शिरोधरान्नाभि मध्यां पृष्ठार्द्ध परिमाणकम्। यजुर्विदां नाभिमतं सामगानामयं विधिः॥

‡ वाम स्कन्धेन विधृतं यज्ञसूत्र फलप्रदम्॥ पवित्रं यज्ञसूत्रञ्च यज्ञोपवीतमित्यपि। यज्ञसूत्रं तदेवोपवीतंस्याद्दक्षिणे भुजे॥ उद्धृते बामबाहौतु प्राचीना वीतमप्यदः। नवी तन्तु तदेवस्यादूद्ध्र्वंवक्षसिलम्बितम्॥ —(जटाधर)

यज्ञ-सूत्रका लक्षण ।

तीन ऊर्ध्व सूतोंको एक साथ लपेट कर सधवा द्वारा जो निर्मित (तैय्यार) किया गया है उसीको विद्वान्‌गण यज्ञ-सूत्र समझते हैं। उस त्रिगुणमें वेदानुकूल प्रवर और ग्रन्थि होनी चाहिये।❋ जितनी प्रवरकी संख्या हो उतनी ही ग्रन्थीकी संख्या होनी चाहिये।[1] अमरकोषकार कहते हैं—उपवीत जिसे ब्रह्म सूत्र कहते हैं, दाहिने कन्धेपर धारण करे। अन्य कार्यमें प्राचीनावीति और कंठमें निवीत रूपसे पहने। [2]अन्हिककारिकाका बचन है:—मूत्रोत्सर्गके समय दाहिने कर्णपर धारण करे। शौचके समय बांये कानपर सदा रक्खे, तथा मैथुनके समय जैसा बराबर पहनता है वैसा ही पहने रहे। [3]अङ्गिराका वचन है,:—पीठसे कण्ठ तक लम्बा यज्ञोपवीत

❋उदृर्ध्वन्तु त्रिवृतंसूत्रं सधवा निर्मितं शनैः।
तन्तुत्रय मधोवृत्तं यज्ञ सूत्रं विदुर्वुधाः।
—कल्कि प्र० ४ अ०

1 उपवीतं ब्रह्म सूत्रं प्रोद्धृते दक्षिणे करे। प्राचीनावीत मन्यस्मिन्निवीतं कण्ठलम्बितम्।

2 मूत्रेतु दक्षिणे कर्णे, पुरीषे बाम कर्णके। उपवीतं सदाधार्य मैथुने तूपवीतियत्॥

3 कृत्वो यज्ञोपवीतं तु पृष्ठतः कण्ठलम्बितम्। विष्मूत्रेतु गृही कुर्याद्वामकर्णौ समाहितम्॥

लटकाकर रक्खे। गृहस्थी लोग बायें कानपर रखकर शौच और मूत्र त्याग करें। [4]सायणका भी यही मत है, भेद केवल इतना ही है, कि ये गृहस्थी शब्द अलग प्रयोग न कर सभी यज्ञोपवीतधारीके लिये उक्त नियमको कहते हैं।

[5]बोधायनका कहना है, कि सर्वदा शिखा बांधकर और यज्ञोपीत धारण कर रहे।

[6]हेमाद्रि तथा भारद्वाजका कहना है, कि दक्षिण बाहूसे लेकर बायें कन्धेतक यज्ञोपवीत धारणका विधान है। यह कार्या देवादि कार्योंमें बहुत प्रशस्त है।

*छान्दोग्य परिष्ट संग्रहमें लिखा है:—

शुद्ध खेतमें पैदा हुए कपासोंके बिने हुए छियानवे (९६) चौओंका लिपटा हुआ, तीन गुणोंका यज्ञोपवीत यत्नपूर्वक

---

4 मलमूत्रंत्यजेद्विप्रो विस्मृत्यैवोपवीतधृक्। उपवीतं तदुत्सृत्य धार्यमन्यन्नवंतदा ॥

5 सदोपवीतिना भाव्यं सदाबद्ध शिखेन च। विशिखोऽप्युपवीतश्च यत्करोतिनतत्कृतम् ॥

6 दक्षिणे बाहुमुद्धृत्य वामस्कन्धे निवेशितम्। यज्ञोपवीतमित्युक्तं देवकार्येषु शस्यते ॥

*कर्पासा निर्मलः प्रोक्तः शुचि क्षेत्र समुद्भवः। आवेष्ट्य षण्णवत्याातत् त्रिगुणी कृत्ययत्नतः ॥ ; स्तनादूर्ध्वायधोनाभ्यां तन्न धार्यं कदाचन। तद्धार्यमुपवीतंस्पान्नाति लम्बं न चोच्छ्रितम् ॥

पहने। यह उपवीत स्तनोंसे ऊंचा और नाभीसे नीचे न रहे। यह अति लम्बा और ऊंचा नहीं हो। जो टूट गया हो या साफ़ न हो (अधिक पुराने होनेपर यदि उसके सूते छिड़ते हों) तो उसे छोड़कर दूसरा नया उपवीत धारण करे। †महाभारतमें लिखा है:—साफ कपड़ा, साफ यज्ञोपवीत, साफ केश, साफ मूंछ, और साफ चन्दन-माला द्रोणाचार्य धारण करते थे।

विधि

यज्ञोपवीत-तीन सूत्रोंको एक साथ लपेटकर बनाना चाहिये। (किसी किसी स्मृतियोंमें इसके बनानेका अधिकार सधवाको ही है) यज्ञोपवीतके धागेको सूत्र कहते हैं। इस सूत्र (सूता) के बनानेकी विधि बड़ी ही आकर्षक है। उस सूत्रको फिर तीन गुण करके प्रवरके अनुसार गांठ देकर पहनना चाहिये। वैदिक विधियां प्रायः तीन प्रवर देनेको कहती हैं। (पौराणिक चालें ३-४-५-और ७ तक की है) यजुर्वेदियोंके यज्ञोपवीतका माप मस्तकसे नाभी तक और सामवेदियोंके बाएं कन्धेसे दाहिने हाथके अंगूठे तक होना चाहिये।

इसके पहननेका काल ब्राह्मण बालकको गर्भसे आठवें वर्षमें, या गर्भसे एग्यारहवें वर्षमें, क्षत्रिय और वैश्यको बारहवें वर्षमें

---

† ततः शुक्लांवर धरः शुक्ल यज्ञोपवीतवान्, शुक्ल केशः सित-श्मश्रुः शुक्लमाल्यानुलेपनम् ॥

है। फिर किसी कारण वश गौण रूपसे १६ वर्षतक ब्रा०, बाईस वर्षतक क्ष० और चौबीस तक वै० के लिये गुञ्जायश है। बादमें पतित सावित्रिका होता है। इस पतित पुरुषोंका सामाजिक संसर्गवन्द करना चाहिये। यदि वह चाहे तो प्रायश्चितपूर्वक यज्ञोपवीत ले सकता है।

प्रायश्चितके रूप इस समय हिन्दू समाजमें बहुत विस्तृत और अनेक मन गढ़े ढङ्गपर प्रचलित हो गये हैं। प्राश्चितका शब्दार्थ आर्ष ऋषियोंने कहा है:—"प्रायः पापं विजानीयात् चित्तञ्च तद्विशोधनम्" अर्थात् जो काम व्यवस्थानुकूल देश, जाति, राष्ट्र, समाज और मानवकी उन्नतिके लिये है,—वही है धर्म, और उसके विरुद्ध आचरण करनाही है "पाप" भूलसे पाप कर लेनेपर पीछे हृदयसे उसे बुरा और अपनेको दोषी समझना ही है, "चित्त," बस, इन्हीं दो शब्दोंके मेलसे विशाल प्रायश्चित शब्दकी उत्पत्ति है। यह दूसरी बात है कि उसे समाज कुछ दण्ड भी दे, किंतु उसमें मनुष्यता अवश्य चाहिये जिसका आज सर्वथा अभाव पाया जाता है।

आरम्भमें इस यज्ञोपवीत-धारण करनेके समयको और अनुष्ठानको 'उपनयन संस्कार" कहा जाता है। इस संस्कार का अधिकार ब्राह्मण, क्षत्रिय, और वैश्य इन तीनों वर्णोंको है। इस संस्कारके होनेपर ही इन तीनों वर्णोंको द्विज कहा जाता है।

आपस्तम्ब† धर्म सूत्र तथा पारस्कर गृह्य सूत्रके भाष्यसे विदित होता है, कि अदुष्ट कर्म करनेवाले शूद्रोंका भी उपनयन होना चाहिये। रथकार (बढ़ही) का भी उपनयन हो। अदुष्ट कर्मसे इनका मतलब मद्यपानसे है, और आदिपदसे सदाचारका है। पारस्कर गृह्यसूत्र भाष्य (हरिहर) में यह भी पाया जाता है, कि औरस, पुत्रीका पुत्र, क्षेत्रज, गूढ़ज, कानीन, पुनर्भुज, दत्त, क्रीत, कृत्रिम, दत्तात्मा, सहोढ़, और अपविद्ध सुत इन बारहों प्रकारके द्विजाति-पुत्र उपनयनके अधिकारी हैं।

---

† शूद्राणामदुष्ट कर्माणामुपनयनम्। इदञ्च रथकारस्योपनयनं। अदुष्ट कर्माणां शूद्राणामुपनयनम्। आ० ध० सू० ॥

शूद्राणां ब्रह्मचर्यात्वं मुनिभिः कैश्चिदिष्यते। याज्ञवल्क्य।

औरसः पुत्रिका पुत्रः क्षेत्रजो गूढ़जस्तथा। कानीनश्च पुनर्भुजा दत्तः क्रीतश्च कृत्रिमः॥ दत्तात्मा च सहोढ़श्च त्वपविद्ध सुतस्ततः। पिण्डदोऽंश हरश्चैषां पूर्वाभावे परः परः॥ एते द्वादश पुत्राश्च संस्कार्यास्युर्द्विजातयः॥ केचिदाहुर्द्विजैर्जातौ संस्कार्यौ कुण्ड गोलकौ॥ ह० ह० भा०

षण्ढान्ध वधिरस्तब्धोजड़ गद् गद् पङ्गुषु। कुब्ज वामन रोगार्त्त शुष्काङ्गि विकलाङ्गिषु। मत्तोन्मत्तेषु मूकेषु शयनस्थे निरिन्दिये। ध्वस्त पुंस्त्वेऽपि चैतेषु संस्काराः स्युर्यथोचिता॥

पा० गृ० सू० ह० ह० भा० २।४

प्राचीन ग्रन्थ *आपस्तम्ब सूत्रमें लिखा है, कि यदि ब्राह्मण वर्ण भी दुष्ट कर्म करनेवाला हो जाय, तो उसका यज्ञोपवीत उतार लेना चाहिये। इस प्रकार वर्ण व्यवस्थाकी यह शैली आवश्यकीय गुण कर्मके आधारपर वर्गी(Classification) कृत है। यह कार्य भारतमें अवश्य कई एक सहस्त्र वर्षोंतक चला है। मेरी धारणामें ऐतरेय-ब्राह्मण, तथा सांख्यायन-ब्राह्मणके समयतक यह वाद प्रचलित था। जबकी उसमें महापतित "कलूष" की कथा पायी जती है। पुराणोंमें कूर्म पुराण, देवी भागवत, और भविष्य पुराणके समयतक भी कहीं-कहीं ऐसी बातें देखनेको मिलती हैं। ईसाके ७ वीं शताब्दीसे भारतवर्ष गुण-कर्म-वर्ण प्रतिष्ठा रहित होकर एक स्थानमें सन्नद्ध हो गया। वस, यहींसे आर्य जाति एक स्थानमें ही न्यस्त हो ह्रास पथपर चल पड़ी।

भिक्षा-चरण।

पारस्कर गृह्यके मतसे ब्रह्मचारी जिस समय भिक्षा मांगे उस समय "भवति भिक्षां देहि"। इस संस्कृत वाक्यमें पहले "भवति" शब्दका प्रयोग ब्राह्मण बटूक करे। क्षत्रिय "भवत"

---

* धर्मचर्यया जघन्योवर्णः पूर्वं पूर्वं वर्णमापद्यते।
अधर्मचर्यया पूर्वो वर्णो जघन्यं वर्णमापद्यते॥
आ० ध० सू० २।६।११।१८

शब्दको मध्यमें और वैश्य अन्तमें "भवत" शब्द कहे। भिक्षा पहले मां से लेकर बादमें मातृ बन्धुओंसे मांगनी चाहिये। कर्मकाण्ड ग्रन्थोंके देखनेसे निश्चय होता है कि भिक्षा स्त्रियोंसे ही मांगनी चाहिये, क्योंकि वह गृहस्वामिनी हैं। भिक्षामें पाये पदार्थोंको गुरू (आचार्य) के पास बालक रख दे। गुरू उस भिक्षा-पात्रमें से बालकको निकाल कर खानेको दे बाकी रख ले। यज्ञोपवीतधारी बालकको चारपाई आदिपर नहीं सोना चाहिये। भोजनमें क्षार लवण आदिका व्यवहार नहीं हो दण्ड धारण, अग्नि परिचरण, गुरू सेवा, और भिक्षा चर्या ब्रह्मचारी अवश्य करे। मधु, मांस, प्याज, लहसून, मज्जन (प्रचलित तीर्थोंमें स्नानको और ह्रदके स्नानको मज्जन कहा जाता है) उपर्य्यासन (पलंग, खाट), स्त्रीगमन, दो बालकोंका एक सङ्ग वा किसी भी अन्य पुरुष वा स्त्री (माता पिता रहित) के सङ्ग शयन, मिथ्या भाषण, बहु वाक्यका बोलना, ईशारे या मटकियोंका चलाना, और अदत्त दान ग्रहण (जिसे किसीने दिया नहीं) परित्याग करे।

इस ब्रह्मचर्य कालको ४८ वर्षतक सेवन करे। इतने दिनोंके अन्दर १२ वर्ष प्रति वेद करके पढ़ना चाहिये।

उक्त विधान अत्यन्त प्राचीन कालके हैं। यह सत्य है कि हमें अपना लक्ष्य सदा इसी उत्तम महत्वकी ओर रखना चाहिये। जिस समय यह विधान था, उस समय भारत स्वतन्त्र था, अतएव यहांकी आयु और शारीरिक दशायें आजसे भिन्न

और वलिष्ट थीं। आजका भारत इस समयसे भिन्न हालतमें दुर्दशा ग्रस्त है। यहां आज जहांतक सम्भव है शिक्षा मनिषी निश्चित पाठन कालका नियम बना रहे हैं। इस समय तो उसी शिक्षा पद्धतिपर ब्रह्मचर्य सेवनपूर्वक चलना चाहिये। शिक्षा रचनामें महर्षि दयानन्दके सत्यार्थ प्रकाशकी शैली अपूर्व है।

इसके अनुसार यदि सामर्थ और पुरुषार्थ कर हम सब चल सकें, तो अति उत्तम हो। हां जो देश स्वतन्त्र हैं वे यदि आर्य धर्मपर चलें तो वहां आज उपरोक्त नियम अच्छी तरह चल सकते हैं। सम्भव है भारत वर्ष भी कभी स्वतन्त्र हो? पुनः इस कर्मकाण्डकी प्रतिष्ठापर चलकर महान् हो? अतएव इसे भूलाना कभी भी नहीं चाहिये।

विशेष पद्धति-ज्ञानके लिये गृह्य सूक्तादि देखना चाहिये। "संस्कार-विधि" में इसकी विशेष पद्धति उपलब्ध है।

अष्टम या गर्भाष्टम वर्षमें ही ब्राह्मणका उपनयन होना चाहिये, परन्तु पीछे इस विषयके भी कई एक नियम बने, पारस्कर गृह्यके भाष्यमें गदाधरने अनेक प्रमाण दिखलाते हुए कहा है कि "छठे और सातवें वर्षमें भी उपनयन हो सकता है। उसके मतसे इसमें कुछ विशेषता भी देखी जाती है। ब्रह्मवर्चसकी कामनासे सातवें वर्षमें, आयुष्कामनासे आठवें वर्षमें, तेजस्कामनासे नवें वर्षमें, अन्नादि कामनासे दशवें वर्षमें, इन्द्रिय कामनासे एग्यारवें वर्षमें, पशु कामनासे १२ वें वर्षमें, उपनयन होना चाहिये। आगे और भी लिखा है कि ब्रह्मवर्चस कामना

से पांचवें वर्षमें उपनयन संस्कार हो सकता है। बल चाहनेवाले क्षत्रियका छठे वर्षमें और धन चाहनेवाले वैश्यका आठवें वर्षमें भी उपनयन हो सकता है।" विष्णु संहिता भी कहती हैं:—"धन कामीका छठे वर्षमें, विद्या कामीका सातवें वर्षमें, सभी प्रकारके कामना विशिष्ट व्यक्तिका आठवें वर्षमें तथा कान्ति, कामी व्यक्तिका नवें वर्षमें उपनयन संस्कार हो सकता हैं।" इस प्रकार इस संस्कारका विस्तार अपने २ अनुभवोंसे शिक्षा विशारदोंने किया हैं, किन्तु कर्मकाण्डके प्राचीन ग्रन्थोंमें ८ वें, ११ वें, और १२ वें, वर्ष ही प्रधान माने गये हैं। यही नियम सर्वसाधारणतः परिपालनीय हैं।

समय-विचार।

प्रत्येक शरीरके लिये देशके जलवायु का बहुत बड़ा सम्बन्ध हैं। इस जलवायु ज्ञानके लिये महीनों और ऋतुओंका एक सुन्दर और निश्चत सम्बन्ध है। किस समय क्या करना चाहिये यह ज्ञान एक बहुत बड़े पैमानेपर विज्ञानवादसे सम्बन्ध रखता है। इस विषयको यों ही समझ लेना और नहीं समझमें आनेपर हेय समझना भूलकी पराकाष्ठा है। अगर आयु और विज्ञानके अनुसार चतुर्दशी अमावस्या, पौर्णिमाके रोगसे प्रत्यक्ष सम्बन्ध देखनेको मिलते हैं, एकादशी, अमावस्या तथा पौर्णिमाको भात छोड़नेपर अन्त्र

वृद्धि आदि अनेक रोगोंके नाश होते पाये जाते हैं, एवं किसी चीजके प्रातःकाल खानेसे लाभ और मध्यान्हमें उसीके खानेसे हानि प्रत्यक्षतया बराबर आये दिन देखनेको मिलते हैं, तो कोई कारण नहीं की, मैं समय-विचारको कुसंस्कार कराकर उड़ा दूं। हमें बड़ा आश्चर्य होता है कि एक डाक्तर साहब रातमें अमरूद खानेसे मुझको रोकते थे, और अनेक "भिटामिन" खाद्योंको समय समयपर खानेका फल बताते थे, परन्तु वही साहबान कर्मकाण्डके समय विचारपर विश्वास रखनेमें आनाकानी करने लगे थे। यह सर्वविदित और आयुर्वेदके नियमानुकूल है कि दिनकी अपेक्षा रात्रिमें रोग बढ़ते हैं। प्रातःकालीन हवासे यदि मध्यान्ह कालकी हवामें शारीरिक क्रियाके अन्तर, और बुद्धि में विपर्यय अवश्य होते है, तो ठीक इस प्रकार बसन्त और शरदादि सभी ऋतुओंके भिन्न २ फल शरीर, मन और बुद्धिपर अवश्य पड़ते हैं, इसे इन्कार करना सत्यका गला घोटना है। इन्हीं नियमोंके आधार पर गृह्य सूत्रादि ग्रन्थोंमें उत्तरायण सूर्य होनेपर बसन्त ऋतुमें ब्राह्मणका, ग्रीष्ममें क्षत्रियका, और शरद ऋतुमें वैश्यका उपनयन संस्कार करनेका विधान लिखा गया है।† मासके सम्बन्धमें ज्योतिष शास्त्रके अन्दर लिखा हैं कि माघ, फाल्गुण, चैत्र, वैशाख, तथा ज्येष्ठ—इन्हीं पांच महीनोंमें उपनयन हो।

---

†वसन्ते ब्राह्मणमुपनयेत्। ग्रीष्मे राजन्यम्। शरदि वैश्यम्। सर्वं कालमेके।
—पा०गृ०

उपनयनको सर्वथा शुक्ल पक्षमें ही करना प्रधान मानते हैं। बहुतोंका मत कृष्ण पक्षमें भी है। अनाध्यायके दिन उपनयनके लिये वर्जित हैं। कारण है, कि प्रायः अनाध्यायोंके जो दिन नियत किये गये हैं, वे मेरे ऋषियोंके खास खास उत्सवोंके दिन हैं। सम्भव है, वे सब दिन उनकी स्मृतियोंके कारण ही अनाध्याय (पढ़नेके अवकाशवाले दिन) माने गये हों।*

अभी भी ऐसे छुट्टीके अनेक दिन सरकार, सम्प्रदाय और समाजोंमें चलते हैं। अपरान्ह कालमें बहुतसे आचार्य उपनयन निषिद्ध करते हैं। मुझको भी यह व्यवस्था अनेक हेतुसे ठीक जंचती है। सर्वप्रधान प्रातःकालिन चित्तकी प्रशस्ति अपरान्ह कालमें नहीं पायी जाती है। एक दिन प्रथमसे ही अन्न त्यागी बालक क्षुधातुर हो जानेसे पूर्णतया संस्कार विधिमें मनोनियोग नहीं कर सकता है, अतः प्रातःकाल उपनयनके लिये उपयोगी है। बसन्तादि ऋतुओंमें सन्ध्या समय हवनपर कीड़ोंके झुण्ड बरस पड़ते हैं। उस समय दीपक रखकर कभी-कभी पढ़ना महा मुश्किल हो उठता है। इस प्रकार मोटे रूपोंमें ही विचार करनेसे सन्ध्या समय पढ़नेमें अनुपयुक्त है।

प्रातःकाल शारीरिक विश्रामान्तके प्रथम भागका समय है। इस समय धमनियां अपनी प्रसस्त और शान्त गति रखती हैं। शरीरके अनेक कार्बोन निकालनेवाले छिद्र खुले से रहते हैं। इस समय इन कारणोंसे चित्त शान्त होता है।

---

* सभी अष्टका और युगमन्वन्तरादि भी अनाध्याय हैं।

चित्त-शान्ति मनुष्यकी स्मृतियोंको ठीक और चिरस्थाई करती है। उस समयका यज्ञ और उसके समिश्रित वायुकी कणियां छिद्रोंसे होकर शरीरमें प्रवेश करती है, कार्बोनके स्थानपर आक्सिज़न देकर मेदा (morrow) को शुद्ध करता हुआ मनस्तत्व (Reality of the mind) को बढ़ाता है। हवनमें सुगन्धित द्रव्य, जो डिस इन फेक्टेन्ट तथा रोग नाशक है, जलते हैं, इसलिये आक्सीजन और ओज़न (शुद्ध तथा सुगन्धित वायु) कार्वन डाई अक्साईड की अपेक्षा बहुत उत्पन्न होता है। यह हवन धूम वास्तवमें सेवन करने योग्य है, रोगनाशक और अन्तरशोधक इससे बढ़कर अभीतक संसारमें अन्य पदार्थ नहीं पाया गया है।

उपनयनके दिन वेदारम्भ करके प्रत्यारम्भ करना होता है। उपनयन पद्धतिके लिये गृह्य सूत्र भी भिन्न-भिन्न हैं। यजुर्वेदियोंके प्रधान पद्धति का ग्रन्थ पारस्कर गृह्य सूत्र है। ऋग्वेदियोंका आश्वलायन, सामवेदियोंका गोभिल, और अथर्वावेदियोंका कौषितकी गृह्य सूत्र हैं। इनके अतिरिक्त भी अनेक सूत्र ग्रन्थ हैं। आर्य-समाजके शास्त्र विश्वासी और पुरातन पथके सच्चे प्रचलनकारी स्वामी दयानन्दजीने सभी प्रधान गृह्योंसे मंत्रोंका संग्रह कर एक सुन्दर स्वल्प "संस्कार विधि" नामक ग्रन्थ रचा है। विद्वानोंको इसे देखना और प्रचलित करना चाहिये। भारतीय सर्वसाधारणके आचार और विचार एक । आपसमें संगठन हो, इसकी अभी परम आवश्यकता है,

अतः संस्कार पद्धति भी सर्वसाधारणकी एक ही होनी चाहिये, अनेक गृह्य सूत्र और अनेक विधियां देशाचारकी हैं, फिर गृह्य सूत्रकार यह भी कहते हैं कि वृद्ध और ग्राम्याचार भी करे। इन बातोंसे स्पष्ट है कि विधिका बंधन कभी नहीं रहा। इससे आज हिन्दू समाज कलहका घर होकर एक दूसरेकी पद्धतिको ऊंच और नीच भावोंमें देखने लगे। इन्हीं दृष्टिकोणोंको रखते हुए महर्षि दयानन्दने प्रायः सभी गृह्योंसे थोड़ा थोड़ा "हंस क्षीर न्याय" से एक उच्च सुन्दर छोटा और लोकोपकारी "संस्कार विधि" रचकर हिन्दू समाजका बडा कल्याण किया है। मैं इसका प्रचलन अच्छा समझता हूं।



यज्ञ-सूत्र-मर्यादा-बन्धन

१—दृष्टिपरक रूपक-समन्वय ।

इस एक यज्ञोपवीतमें जो ३ धागे दिये जाते है। वह एक एक धागा ९६ चौवेका होता है। यह ९६ चौवा×३गुणा=बराबर २८८ चौवेका इकहरा ३ लपेटोंमें बान्धा जाता है। उसके बन्धन (गांठ) को संस्कृतमें "ब्रह्मग्रन्थी" कहते हैं। इन तीन लड़ियोंको भिन्न भिन्न दशामें रखते हुए एक ब्रह्म ग्रन्थीमें पीरोने पर कुछ लोग यह उद्देश निकालते हैं कि "सृष्टिकी अवस्थामें इसी प्रकार ईश्वर, जीव, और प्रकृति एक बन्धनमें बन्धे हैं। साथ ही ब्रह्म ग्रन्थीमें जो पुनः तीन लपेट दिये जाते हैं:—वह समस्त सृष्टिकी, क्रमशः उत्पत्ति (ब्रह्मा) स्थिति, (विष्णु) और प्रलय (रुद्र) की लपेट है। इसीने तीन घेरोंके रूपमें ब्रह्माण्डकी सृष्टिको लपेट रक्खा है। बादमें उन लपेटोंपर जो फिर ३ गांठ पडते हैं, वह सत्व, रज, और तामसकी अवस्थासे जकड़े हैं। इसी प्रकार ये सबके सब जो दो लम्बे सूतोंसे लिपटे हैं वह रात्रि और दिवाके संकेतक हैं। सबके ऊपर नियन्ता एक फिर गांठके रूपमें विराज-

मान है। इस उपवीतसे इस प्रकार सृष्टि तत्व समझमें आता है, जिसे ऋषियोंने सदा स्मरणार्थ कन्धेपर रखनेकी रीति रूपमें चला रक्खी है।

२—आध्यात्म परक रूपक समन्वय।

कर्म, उपासना, और ज्ञानवाली तीन लड़ोंमें धर्म, अर्थ, तथा कर्मकी लपेटोंसे, पुनः तीन दैहिक, दैविक, और भौतिक रूप तीन गांठों द्वारा बन्धनसे मुक्त ईश्वर और जीवके सम्मेलनसे ऊपर एक मुक्ति (परम पद) के अवस्था की ध्वनि प्रतीत होती है।

३—योगमय रूपक।

समाधि, विभूति, और कैवल्य मय सत्य संकलिपत योगि-योंकी तीन लड़ोंवाली अवस्थासे इङ्गला, पिङ्गला, और सुषुम्ना नामकी नाड़ियां लिपट गई हैं। उनपर धारणा, ध्यान समाधि की तीन गांठोंसे गठित (क्रिया-बन्ध) सविचार और निर्विचार रूप दो लिपटनसे प्रमोदित योगियोंकी सबसे उपर वह एकत्व-वाद "तत्वमसि" "सोऽहमस्मि" के गम्भीर, तीक्ष्ण, सूक्ष्म, और ब्रह्ममय अवस्थाका दिग्दर्शक ध्वनित है।

४—संस्कृत-व्याकरण-शास्त्र परक रूपक।

उदात्त, अनुदात्त, तथा स्वरित् उच्चारणवाला व्याकरण (शब्दशास्त्र) भूत, भविष्य, और वर्त्तमानके तीन लपेटोंसे लपेटा

हुआ, एक बचन, द्विबचन, और बहुबचनोंके गांठोंसे बंधकर, नाम और आख्यात्के साथ मिलकर एक शब्द शास्त्रके शुद्ध चिन्होंको भी इस यज्ञोपवीतके आकारसे समझा जाता हैं।

५—कर्मकाण्ड परक रूपक

ऋग्वेद, सामवेद, और अथर्ववेद रूपी उपवीतको तीन लरोंपर ज्ञान, कर्म, और उपासना रूप तीन लपेटोंपर भूः, भूवः, और स्वः, इन तीन महाव्याहृतियोंके तीन गांठोंपर, आचार्य, और शिष्य (यजमान) पर महान् एक यज्ञ (अथर्व) कर्मकी ध्वनि इससे लक्ष्य की जाती है।

६—राजनीति परक रूपक।

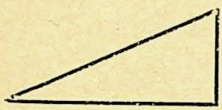
साम, दाम, और दण्ड रूप ३ छरोंमें सेना, दुर्ग (कीला) और ख़जाना रूप, पुनः ३ मज़वूत लपेटों द्वारा राजाकेलिये इनकी आवश्यकता दिखा कर, उसपर सन्धि, विग्रह, और युद्ध इन तीन गांठोंसे दृढ़तापूर्वक राज्य बन्धन दे, वादमें प्रजा, तथा राजाके सुन्दर दो मिलनपर एक शासनका रूप दिखाया है। यह महान् राजनीतिकी दृढ़ भित्ती है।

७—आचार परक रूपक।

माता, पिता और आचार्यकी सेवार्थ ३ लरें हैं। पुनः ब्रह्मचर्या, गार्हस्थ, और वानप्रस्थ रूप ३ आश्रमों द्वारा समाज सेवा परक ३ लिपटन हैं, वादमें त्रिपदा (गायत्री मंत्र) के

जापका तीन बन्ध रूपसे लक्षित कर सदा सुख और दुःखोंके मेलमें रहते हुए, ऊपर एक अन्तिम सन्यासाश्रम रूप भगवद् चिन्ताका गांठ दिया जाता है।

८ – त्रिकोण मितिका रूपक।



इस त्रिभुज (रेखागणित) के लक्ष्य पर ३ लरें देकर इसे सिद्ध करने वाली जो ३ लपेटें हैं, ये इस रेखा गणित के आधारपरक है यथाः—

१—साईन क=साईन ख (Sine)

२--कोसाईन क=कोसाईन ख (Cosine)

३—टेञ्जेण्ट क=टेञ्जेण्ट ख (Tangent)

की ३ लपेटोंसे लिपटी हुई क्रियाको बता कर,

१—सीकाण्ट (Secant) क= $\frac{१}{\text{कोसाईन (क)}} = \frac{१}{\text{कोसाईन (ख)}}$ = सीकाण्ट (ख)

२—कोसीकाण्ट (Cose cant) क= $\frac{१}{\text{साईन (क)}} = \frac{१}{\text{साईन (ख)}}$ =सीकाण्ट (ख)

३—कोटाञ्जेण्ट (Cotangent) क= $\frac{१}{\text{टांजेण्ट (क)}} = \frac{}{\text{टांजेंट(ख)}}$ कोटाजेण्ट (ख)

इस मुख्यतः उसके सिद्धिके विभाग रूप ३ बन्धन अर्थात् गांठोंसे बताकर दो मिलन रूप सरल भेदोंको अर्थात् सरल त्रिकोण (Planetrigonometry) और वर्त्तुल त्रिकोण (Spherical trigonometry) दिखाया है। बादमें सबसे सम्बन्धित एक गांठसे वैश्लेषिक त्रिकोण मिति (Analytical trigonometry) ध्वनित है।

६–आधुनिक विज्ञान परक रूपक।

तीन लड़ियोंसे क्रमशः विज्ञानवादमें मूल शक्तिके पावर (Power), फोर्स (Force) तथा एनर्जा (Energy) का ज्ञापक मानना चाहिये।

उसमें जो पुनः ३ और लपेट हैं उनसे इसी विज्ञानके प्रो० हलमान (Halman) के मतानुकूल गतिशक्ति Energy of motion) क्रियामान शक्ति (Kintic Energy) मध्याकर्षण शक्ति (Energy of Grovitation) के भेदकी तीन लपेट जानें। उसके ऊपरके तीन गांठोंसे स्थिति स्थापकता शक्ति (Energy Elasticity), योगाकर्षण या संघात शक्ति (Coherusion Energy) और ताप (Heat) की गांठ समझें। पुनः दोके एक साथ मिलनसे विश्व-प्राण शक्ति (Cosmopsychical Energy) और अज्ञेय महाशक्ति (Inserutable Power) के दो मिलनजो समझते हुए, सबके ऊपर एक (Unity of forces) एकत्व शक्तिको जानें।†

---

† देखो ऋग्वेद ३।२२।२ और ८।४३।६ में।

यह एकत्व शक्ति ऋग्वेदके मतानुकूल है। उसमें लिखा है :—एक ही परम तत्वकी शक्ति कहीं अग्नि रूपमें, कहीं बिजली रूपमें, कहीं आदित्य रूपमें. और सर्वत्र वायु रूपमें प्रतिष्ठित है। अग्नि, वायु, आदित्य ये तीनों लोकोंमें वर्त्त-मान हैं।

एक ही धागा क्यों ?

मैंने ऊपरमें जो आठ प्रकारका भिन्न-भिन्न रूपक संक्षेपमें मुख्यतया दिखाया है, वे सबके सब मुख्य हैं, और उनके शाखा प्रशाखा अर्थात् भेद और उपभेदें (Separation and sulestitute for a separation) बहुत हैं। उनमें जो मुख्य हैं, उन्हें और भी सूक्ष्म प्रकारसे यज्ञोपवीतके द्वारा निबद्ध कर स्मरण कराया गया है, किन्तु यह सदा ध्यान रहे, कि यह यज्ञोपवीत सूतकी लम्बाई अर्थात् मूलसे तैय्यार होगी। कारण है, कि वेद एक ही है; और वही सम्पूर्ण सत्य विद्याका भण्डार है। संसार के समस्त विज्ञानवाद वेदसे ही आरम्भित हैं, अतः स्वाभाविक है कि उस एक डोराका दो मुख होगा। जैसे हमारी इस पृथ्वी के घेराका दो भाग है। इसे भौगालिक पण्डितगण Western Hennisphere and Etsern Hennisphere कहते हैं।

वेद और तीन धागे

ऋग्वेदमें एक मन्त्र आता है कि:—

"त्रिरस्यता परमा सन्ति सत्या स्पार्हा देवस्य जनिमान्यग्नेः। अनन्ते अन्तः परिवीत आगाच्छुचिः शुक्रो अर्य्यो रोरुचानः ॥" ऋ० ४।७।१॥

अर्थः—हे मनुष्यो ? (अस्य) इस उपवीतके (त्रिः) तीन लछ (परमा) अति उत्कृष्ट (सन्ति) हैं। (ता) उसके (सत्या) सत्य व्यवहारमें (स्पार्हा) आकांक्षा करने योग्य है, और (अग्नेः) अग्निके (जनिमानि) व्यवहारमें=अर्थात् पञ्च यज्ञ करनेमें, (देवस्य) दिव्य गुण कर्म स्वभावके (मध्ये) बीचमें (अनन्ते) परमात्माके विषयमें (शुचिः) पवित्र (शुक्रः) आशुकारी (अर्यः) श्रेष्ठ (रोरूचानः) अत्यन्त प्रकाशवान् (परिवीतः) यज्ञोतवीत (आगात्) अच्छी तरह प्राप्त होता है।

वेद मन्त्रोंमें और भी कई एक प्रमाण आगे आ चुके हैं। सज्जन गण उसे मिला लेंगे ?

इस प्रकार यह पूर्णतया सिद्ध हो जाता है, कि यज्ञोपवीत बड़े महत्वसे परिपूर्ण होकर वेद कालसे और परमात्माकी उस अन्त सृष्टि कालसे तान धागेके लर्छमें बनाकर सदा आर्य-गण धारण करते आ रहे हैं। आशा है वेदमें उपवीतका विधान न माननेवाले मनीषि वृन्द इसपर अपना अमूल्य विचार विमर्श प्रदान कर, सामाजिक, धार्मिक, वैज्ञानिक, वैदिक और राष्ट्रीय विकाशके मूल आधार, इस उपवीतके महत्वका प्रसार उदार भावसे पोषण और ग्रहण करेंगे। इति॥



इतिहासकी एक झलक

आर्य जातिकी सभ्यता का इतिवृत्त जबसे पाया जाता है तबसे यज्ञोपवीत है। उस भारतीय सभ्यताका मूल नींव कब पड़ा सठीक कहना दुःसाहस ही नहीं, अपितु पुरातत्वका वास्तवमें मखौल करना है। मैं इस वर्त्तमान समयको इतिहासके लिये गोद खेलता शिशु-काल कहता हूं। आजसे कुछ वर्ष पूर्व जो मेरे अङ्गरेज परिश्रमी विद्वानोंका कार्य, इस दिशामें हुआ हैं, वह कुछ नहींके बराबर ही है। इतना तो इतिहासको उससे लाभ अवश्य हुआ है जितनी मात्रामें बीजका बपन होता है। आजकी प्रति दिनकी खुदाई, और प्राचीन संग्रहें हमें उस अतीत भारतके उद्रिक्त सुनहरे युगपर एक एक कर अपूर्व आभा देती हैं। अभी एक महाराष्ट्रीय* विद्वान्ने एक गणनासे ऐतरेय ब्राह्मणको आजसे ३०००० लाख वर्ष पूर्व बननेका काल पुरानी ही शैलीसे गणना कर निश्चय

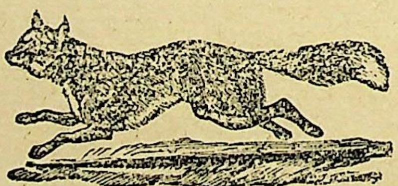
---

* दीनानाथ शास्त्री कृत "वैदिक काल निर्णय" देखें।

किया है। बातें कुछ हों, किन्तु यह भी यदि निर्भ्रान्त नहीं तो सहसा उड़ा देनेका भी नहीं है। कौन जानता था कि पाश्चात्य देशीय विद्वानों द्वारा रचे भारतीयोंके अल्पकालीन इतिहासको "मोहञ्जोदारो" और "एजिप्ट" इस तरह पूरे ईसाके धर्मसे कमसे कम ६००० वर्ष पूर्व उन्हीं पाश्चात्य पंडितोंको माननेके लिये वाध्य कर देंगे।

भारतवर्षके धार्मिक अनुसन्धान और तत्वें भी उक्त प्रकार ही पेचिले हैं। आर्य जाति जबतक वेदानुकूल रही तबतक वे प्रत्येक कर्त्तव्योंको "धर्म" कहा करती थी। आजके यूरोपियन भाषा भाषी लोग धर्मको रैलिजन (Religion) कहते है। सत्य तो यह है कि रैलीजन शब्द वास्तवमें "धर्म" शब्दके किसी भी अर्थका पर्याय वाचक नहीं रह सकता है। आर्य संस्कृतके अन्दर संस्कार एक असाधारण धर्म माना गया है। सबसे बड़ी विशेषता यहांपर यह है, जो और किसी भी धर्ममें नहीं देखा जाता है कि आर्य लोग स्वधर्मीकी सृष्टिके लिये ही गर्भाधान करते थे। आमोद और विलास अवश्य मनुष्यत्वको कमसे कम कुछ समय तक अन्य दशामें प्रमत्त कर देता है, किन्तु आर्य संस्कार ठीक इससे विरुद्ध देखा जाता है। इसमें यह पूर्ण मनुष्य रहता हुआ, धार्मिक रहता है, साथ ही वह अपने अमूल्य वीर्य द्वारा अपना स्वधर्मी पैदा करता है। इस भावनामें कितनी बड़ी राजनीति (Politics) व्यवहार (Law) और Nation के गहन रूप हैं। यह मार्मिक

तत्वसे विचार करने योग्य है, इस प्रकार यह दृढ़तापूर्वक कहा जा सकता है कि आर्योंके भिन्न भिन्न १६ संस्कार आचार शास्त्र (Ethics) के विशाल भव्यमय स्वरूपकी प्रतिष्ठाके साथ समाजको सुदृढ़ करनेवाले हैं। इन तमाम संस्कारोंके बीच यज्ञोपवीत संस्कार सबसे अधिक उपयोगी हैं। यही एक संस्कार ऐसा हैं, जो मनुष्यत्व (Humanity) का आरोप कर आर्य जातीयत्व (Aryan Politeness) को परम्परासे सुरक्षित रखनेवाला है। इस सम्बन्धमें आगे भी मैंने कई एक विचार दर्शाये हैं। उन सभी स्थनोंको देखनेसे इस शैलीका अर्थ सुगमतया समझमें आ जा सकता है।



बुद्ध-धर्म और उपवीत

बौद्ध मतमें उपनयनका प्रतिविम्ब।

बौद्ध धर्मीय महायानोंके एक ग्रन्थ सिद्धान्त उडुम्बर है। उसमें एक जगह गायत्री मन्त्र पाया जाता है:—ॐ सिद्ध देवः सिद्धः धर्मोवरेण्य मस्य धीमहि भर्गो देवो धीयोयोन सिद्ध धर्म प्रचोदयाद्"।
(१२ अ)

इस गायत्री मन्त्रको बौद्ध धर्मी महायानगण जपते थे। इस मन्त्रका अनुकरण वेदके प्रसिद्ध सावित्री मन्त्रका है। जिसे सर्वसाधारणमें गायत्री नामसे प्रसिद्धि प्राप्त है। यह महायान सम्प्रदाय बुद्धके निर्वाण कालसे एक दो वर्षबाद ही चल पड़ा था। कहते हैं बुद्ध धर्मके सर्व प्रसिद्ध महाराजा कनिष्क इसी महायन सम्प्रदाय भुक्त थे। इस सम्प्रदायका सर्वप्रथम आचार्य अश्वघोष १ ली शताब्दीमें हुआ। इसकी भींव वैशाली की महासंघिक सभासे पड़ी। इसका आदि बौद्ध शास्त्र पाली भाषामें लिखा गया था। कनिष्कने इस मतमें सूर्य

प्रस्थान भी संक्रमित किया। इस तरह यहां यह सरलतया समझ पड़ती है कि बुद्धने यद्यपि उपवीत धारणका स्पष्ट उल्लेख नहीं किया फिर भी उनके मरनेके बाद ही उस मतमें गायत्री मन्त्र जाप चल पडा। इसके लिये और भी कुछ प्रमाण बहुत बल रखते हैं। श्री गौतमदेवने "उपनयन" को धर्म मार्ग पर ले जानेवाला, और "उपवीतको शांत पद्की प्राप्ति कहकर उल्लेख किया हैं"।† "महावग्ग" नामक पाली ग्रन्थमें लिखा है कि जब कोई बौद्ध धर्ममें सन्यासकी दीक्षा ग्रहण करता था तो उस समय उसे तीन आश्रय ग्रहण करनेका उपदेश दिया जाता था, बुद्ध, धर्म, और संघ, वह इसे सदा पाली भाषामें इस तरह जपता था:—"बुद्धं शरणं गच्छामि, सङ्घं शरणं गच्छामि", भोट देशीय व्युत्पति ग्रन्थमें इसकी व्युत्पत्ति जो की गई है, उसमें लिखा हैं:—

"बुद्धं द्विपदां नामग्र्यं, धर्मं विरागा नामग्र्यं,
संघं गणानामग्र्यं।"

इस "त्रिशरणागमन" वाक्यकी आलोचना करनेपर स्पष्ट होता है कि बुद्ध धर्ममें प्रधान तीन धार्मिक नियमकी भीत्ति वैदिक धर्मी यज्ञोपवीतके त्रिगुण विशिष्टसे ही लिया गया है, और उन लोगोंको "यज्ञोपवीतं" मन्त्रके चतुर्थ पादका "आ-

---

†मज्झिम निकाय १।५।६। और ३।२।६। देखना चाहिये।

युष्य मग्र्यं" यह पूर्ण स्मरण थे, अतः उसी शब्दका व्यवहार "व्युत्पत्ति" ग्रन्थने किया है। आगे चलकर यह भी देखा जाता है कि जिस प्रकार ब्रह्मचारियोंके तीन परिधान गुरूकुल में थे, उसी प्रकार बौद्ध धर्मके अन्दर भी तीन ही "परिधेय" श्रवणोंके लिये हैं, जैसे, १—अन्तर बासक, २–उत्तरा सङ्ग, ३—संघाति।

अन्तर वासक मेखलाकी तरह कमरमें बौद्धोंको बांधनेके लिये कहा गया है। उत्तरा संग उपवीतकी तरह बक्ष और स्कन्ध देशके आवरणके लिये व्यवहृत होता था। सङ्घातिका व्यवहार "अजिन" के स्थानपर था, किन्तु प्रकृत ज्ञान इसका जिस प्रकार उपनयन पद्धतिमें है, उसी प्रकार वौद्ध धर्ममें भी।

बुद्ध धर्मकी इस आलोचनासे यह प्रमाणित होता है कि यज्ञोपवीत धारण प्रथा आर्य वैदिक सम्प्रदायमें बुद्धसे भी पहले अवश्य था, और उसके प्रभावसे बौद्ध धर्म भी सर्वथा निछका नहीं बच पाया।



जैन धर्म और उपवीत

जैन धर्मके "आदि पुराण" में लिखा है कि:—"इस असवर्णी कालके प्रथम चक्रवर्ती भरत महाराजने (जिनके नामसे इस देशका नाम भारतवर्ष पड़ा) दिग्विजय यात्रा करके अनेक सेना सहित दिग्विजयकी प्रथा चलाई। एक दिन राजद्वारमें घास आदि बोकर इन्होंने सभी प्रजाको बुलायी। जो लोग घासपरसे दरबारमें आये उन्हें पूर्ण अहिंसक न समझा गया, और घासपरसे जीव हिंसाके भयसे जो लोग नहीं आकर अन्य मार्गसे आये वे श्रेष्ठ ब्राह्मण पद वाच्य हुए, और इन्हें उपवीत दिया गया। इन्होंने फिर उन्हें जन्म और कर्म द्वारा भेदकर दूसरी बार संस्कार होनेकी संज्ञा "द्विज" दी।"

इस प्रकार जैन ग्रन्थमें स्पष्ट उपवीत धारणका इतिहास देखकर, निश्चय रूपसे कहा जायगा कि "यज्ञोपवीत" संसारमें अत्यन्त पुराने समयसे चला आ रहा है।

सिक्ख-धर्ममें यज्ञोपवीत

सिक्खोंके आदि प्रवर्त्तक हैं, गुरू नानकदेवजी महाराज। आपकी एक वाणी इस विषयमें जो देखनेको मिलती हैं, उससे यह पता चलता है कि आप केवल सन्यासी (साधु) के लिये यज्ञोपवीतको जो कपासका है, और बाहर रहता है, उसे निकालकर अन्दर मनमें यज्ञोपवीत धारणका आदेश देते हैं।

"दया कपाह संतोख सूत, जत गंढी सत वट्ट।
एह जनेऊ जीउका, हयिता पांडे घत्त॥
ना एह तुट्टे नां मल लग्गे, ना एह जलै न जाय।
धन्नसो मानस नानका, जो गल चल्लै पाय॥"

इन शब्दों द्वारा नानकजी मानसिक उपवीतका धारण इसलिये श्रेष्ठ बताते है कि वह टूट भी नहीं सकता, और मैला भी नहीं हो सकता है। इससे स्पष्ट है कि आप यज्ञोपवीत को बहुत श्रेष्ठ समझते हैं, इसके मैले और टूटनेका आपको बहुत दुःख है। उपरका वाक्य ध्वनि रूपसे उपदेश दे ही देता है कि यज्ञोपवीत सदा साफ और मजबूत पहनना चाहिये।

आचार्य

आचार्य शब्द संस्कृतके "चर" धातुसे आ उपसर्ग मिलाकर (आ+चर+ण्यत्) ण्यत् प्रत्यय द्वारा "इन्द्रवरुणादि–" (पा॰ ४।१।३६) सूत्रसे बना है। मनु संहिता कारने लिखा है—"जो ब्राह्मण शिष्यको उपनयन पहना संकल्प और सरहस्य वेद पढ़ाता है, वही वेदाध्यापक आचार्य होता है। यहांपर सदा स्मरण रखना चाहिये, कि जो अध्यापक यज्ञोपवीत देनेवाला नहीं है, और पढ़ानेवाला है, वह "उपाध्याय" है, आचार्य नहीं। आचार्यके लिये प्रथम कर्त्तव्य है यज्ञोपवीतका देना। यह ठीक है कि जो लोग केवल यज्ञोपवीत देते और वेदाध्ययन नहीं कराते वह पूर्णतया आचार्य पद वाच्य नहीं होनेको परिपूर्ण हैं, किन्तु "सामान्य और विशेष शास्त्र" न्यायसे आचार्य पदवाच्य वही है, और उपवीत संस्कारके प्रत्येक कर्मका विधिपूर्वक अनुष्ठान वही करे, और शिष्य भी सदा उस व्यक्तिका आदर एवं शिष्टाचार किया करे।

आचार्यकी आवश्यकता ।

उपनयनकालमें ब्राह्मण (गुण कर्मादिसे) तीनों वर्णोंके आचार्य होंगे। उपनयन कालमें ब्राह्मण आचार्य बना कर तब उपनयन देना चाहिये। कारण है, कि मनु संहिताके अनुकूल एवं महर्षि दयानन्दके सत्यार्थ प्रकाश, श्रीकृष्णचन्द्रकी गीता आदि अनेक सद्ग्रन्थोंके अनुसार क्षत्रिय और वैश्यको केवल वेद पढ़नेका अधिकार है पढ़ानेका नहीं, और उपनयन संस्कार में वेदारम्भ करना होता है, इसलिये यह कर्म ब्राह्मणके लिये ही सुरक्षित है। यहांपर यह जान लेना चाहिये कि इससे छोटा और बड़ाका कोई प्रश्न नहीं है। यह पद्धति संसारको सदा अच्छी तरहसे चलानेके लिये ही नियमके शास्त्रकारोंने और मनु तथा कृष्ण जैसे राजनीति निपुणोंने की है। जब इस प्रकारके भिन्न-भिन्न कर्म आर्य्य जातियोंमें बंटे थे, तो आर्य्य जाति सुउच्च उन्नति शिखरासीन थी। आज उस आदर्श नियम के पालनेमें असमर्थ आर्य्य सन्तान किस दशामें आ पहुंचे हैं, इसे मैं अपने मुखसे न कह कर उन्ही सपूतोंपर कर्त्तव्य समझनेके लिये छोड़ देता हूं।

आगे कुछ प्रमाण आचार्यके विषयमें दिये जाते हैं, इससे यह समझ लेनेमें सुभीता होगी, कि आचार्य पद प्राचीन आर्य्यावर्त्तमें किस गम्भीरत्व और लोकोपकारक उद्देश्यपर प्रतिष्ठित किया गया था। प्रमाण नीचे दिये जाते हैं :—

कस्मादाचार्य्य आचारं ग्राह्यत्यचिनोत्यर्थान्, अचिनोति बुद्धिमितिवा।" नि० १, ४, ७, २२।

अर्थ :—जो वेदविहित सदाचार समूहोंको ग्रहण करावें, एवं जिसके निकटसे सद् अर्थ या सद्बुद्धि लाभ किया जाता है वही आचार्य है।

उपनीयतु यः शिष्यं वेदमध्यापयेत् द्विजः।
संकल्पं सरहस्यञ्च तमाचार्यं प्रचक्षते॥

म० २, १४०।

अर्थ :—जो शिष्यका उपनयन कर, संकल्प, सरहस्य वेदों को पढ़ाता है, उसीको आचार्य कहना चाहिये।

आगे और मनु कहते हैं, दश जन उपाध्यायके समान एक आचार्य, एक सौ आचार्य के समान एक पिता, तथा सहस्र पिताके समान एक माता है†।

मेखला बन्धन चिन्हित जो ब्रह्मजन्म है उसकी माता सावित्री है और पिता आचार्य।

"यस्तुपनीय व्रतादेशं कृत्वा, वेदमध्यापयेत्तमाचार्यं विधात्।"

वि० स० २९-१॥

अर्थ :—जो उपनयन देकर, व्रतका आदेश दे, वेद पढ़ाता है, वह आचार्य है।

---

† मनु २।१७०-७१॥

इमां भूमिं पृथिवी ब्रह्मचारी, भिक्षामा जभार प्रथमो दिवंच। ते कृत्वा समिधावुपासते, तपोरार्पिता भुवनानि विश्वा॥

अर्थ :—ब्रह्मचारीने पहले भिक्षामें द्युलोक और पृथिवी-लोकको प्राप्त किया है। इन दोनों लोकोंमें ही अन्य भुवन स्थापित हुए हैं। उक्त दोनों लोकोंकी भिक्षा प्राप्त कर ब्रह्मचारी दो समिधायें बना ज्ञान यज्ञ द्वारा उपासना करता है।

यह मन्त्र उपनयन संस्कारकी विधिको स्पष्ट दर्शा रहा है, कि ब्रह्मचारी उपनयनके पहले ही दिनसे दो तरहकी भिक्षा करे। पहली भिक्षा अपने बांधवोंसे करे। इन मन्त्रोंसे ज्ञान और कर्म दोनों बातें जो आर्य धर्मके मूल सिद्धान्त हैं, स्पष्ट और सरलतया समझ पड़ती हैं। भला, बताइये इस तरहके ज्ञान और राष्ट्रके उत्कट भावोंको कूट कूट कर भरनेवाला यज्ञोपवीत कौन नहीं धारण करेगा ?

याज्ञवल्क संहिता कहती है—जो यजनादि क्रिया करके शिष्यको वेद देता है वह गुरू, और जो उपनयन देकर वेद प्रदान करता है वह आचार्य है। (१-३४)

चरकमें :—वेदाचारमें परिशुद्ध, अखिल कर्मज्ञ, कुशल, दयावान्, शुचि, जितहस्त, उपकरणयुक्त, सर्वेन्द्रियोपपन्न, प्रकृतिज्ञ, प्रतिपत्तिज्ञ, अनुपस्कृत विद्य, अनसूय, अकोपन, क्लेशक्षम, शिष्यवत्सल, अध्यापक, तथा ज्ञानदानमें समर्थ है, वही आचार्य है।

विधान पारिजातः—आचार्य्य यज्ञकर्मका उपदेशक, गुरू है।

ऋग् , यजु० और साममें आचार्य्य शब्दका उल्लेख नहीं है।

अथर्व—"आचार्यं तपसा पिपर्ति।"

अर्थ—शिष्य वेदके अध्यापक गुरूको तप द्वारा प्रतिपाल करे।

साय० भा०—शिष्यके सन्मार्गवृत्ति द्वारा आचार्य प्रतिपालित होते हैं, और शिष्यकृत पापसे आचार्य कलुषित होते हैं।

आचार्यस्ततक्षनभसी उभे इमे, उर्वीगम्भीरे पृथिवीं दिवंच। ते रक्षति तपसा ब्रह्मचारो तस्मिन् देवाः सं मनसो भवन्ति अ० ११।५।८॥

आचार्यने इन दो ढकनोंको लम्बे, चौड़े, गहरे, द्यौ और पृथिवीको बनाया। ब्रह्मचारी अपने तपसे उन दोनोंकी रक्षा करता है। उनमें देवता एक मनवाले होते हैं।

आचार्यो ब्रह्मचारी ब्रह्मचारी प्रजापतिः प्रजापति विराजति विराडिन्द्रोभवद् वशी ॥१६॥

ब्रह्मचारी आचार्य है, ब्रह्मचारी प्रजापति है, प्रजापति (होकर वह) शासन करता है, विराड़वशमें रखनेवाला इन्द्र हो गया है।

*गोपथ ब्राह्मणमें लिखा है कि आचार्य सदा संस्था बनाकर रहें। यह नियम पूर्वसे ही भारतमें चला आता है। इस संस्थामें बराबर छात्रोंके लिये शिक्षा दानकी व्यवस्था थी। यह संस्था बहुत ही स्वतन्त्र थी। इसके कार्योंका समाचार जनसाधारण सुना करते थे।

इस विषयमें छान्दोग्यने भी लिखा है, कि ‡आचार्यसे ही विद्या ग्रहण करे। इसीसे शिष्य प्रतिभाशाली हो सकता है।

इस तरह तैत्तरीयका भी बचन है:—कि †शिष्यपर केवल मात्र आचार्य ही शासन करे।

इस प्रकार आचार्यके सम्बन्धमें विस्तृत रूपसे शास्त्रोंके मतको जान लेनेपर पता चला कि किसी भी समाज, और राष्ट्रका सदा उन्नत और दृढ़ रखनेके लिये युक्त और स्वच्छन्द भावसे शिक्षा दानकी आवश्यकता है। इन कार्योंकी पूर्तिके लिये दूरदर्शी, समयज्ञ, स्वधर्मनिरत, स्वराष्ट्राभिमानी, स्वसभ्यता प्रेमी, और स्वसाहित्यवेत्ता, जनोंकी जरूरत है। उनकी एक संस्था भी होनी चाहिये। वही सदा समयानुकूल युक्त और उपयुक्त विचारोंको किया करे। राजा उसका केवल

---

* संस्थानाध्यायिन आचार्य्याः पूर्वं बभूवुः; श्रवणा देव प्रतिपद्यन्ते। न कारणं पृच्छन्ति। —गो०पू० १,२७॥

‡आचार्या द्धैवहिविद्या विदिता। सधिॐ प्रापयति। छा०उ० ४।६।३॥

†आचार्य्यान्ते वासिनमनु शास्ति। —तै०उ०१-३-२॥

रक्षक रहे। उनका पथ प्रदर्शक बननेका कभी भी लोभ हृदय में न लावे। इसी उक्त संस्थासे ४ भाग बनाया जाय।

१—बुद्धि प्रधान उद्योग।

२—बाहु बल एवं रण कौशल-द्वारा अपने राष्ट्रकी रक्षा।

३—राष्ट्रका वैभव बढ़ाना, धनधानकी समृद्धिसे राष्ट्रका पोषन करना।

४—कलाकौशलसे राज्यको सुन्दर और स्वर्ग रचना तथा आवश्यक परिचर्या करना।

इसी चार भागोंमें राष्ट्र मुख्यतः बंटा रहे, यही था पूर्व कालका वर्णाश्रम। इन सबोंका वर्ग भेद राष्ट्रकी उन्नति और सुचारू रूपसे राष्ट्र सञ्चालनार्थ बना था। किसो भी वर्णके लोग दूसरे वर्णवालोंसे द्वेष न करते थे। जैसे आज कांग्रेसी मिनिस्टरीमें न्याय-मन्त्री, और अर्थ-मन्त्री आदिमें द्वेष जरा भी नहीं है। चारों वर्ण एक दूसरेका प्रीतिपूर्वक सम्मान करते थे। यहांपर इस विषयमें एक घटना प्रसङ्गतः याद आती है, राजा दुष्यन्त शकुन्तलाको बार बार देखना चाहते थे, परन्तु ऋषि आश्रममें जानेसे भय भी खाते थे। उनके मित्र उन्हें यह कहकर भेजनेका यत्न करते, कि राजसत्ताके बलपर तुझे कण्वके आश्रममें जाते कौनसी रुकावट है? फिर भी दुष्यन्त कण्वके आश्रममें तभी जाते थे जबकि उनका वहां जाना आश्रमवासियोंको जरा भी अयोग्य प्रतीत न हो? इससे पता चलता है कि उस समयके ब्राह्मण अपने ब्रह्म तेजका उत्कृष्ट

परिपालन किया करते थे। यही कारण था कि एक प्रताप-शाली राजा भी इनसे भय करते थे, और सहर्ष इनके समक्ष अपने सिरको झुकाकर सिंहासनसे अलग खड़े होते थे। राज्य सत्ता यहां बुद्धिवाद और त्यागके समक्ष झुक जाती थी। राज्य सर्वदा विद्वानोंके ही उपर अवलम्बित है। उपरकी पंक्तियोंसे यह आप देख चुके कि प्राचीन आर्यावर्त्त में राजकाज धर्म प्रधान था। इस उद्द श्यको सदा प्रवाह रूपसे जाग्रत रखनेके लिये उस समय दो संस्थायें थीं। उनके नाम थे "आचार्य संस्था" और "राज संस्था।" आचार्योंको साधारणतः पुरोहित भी कहा जाता है। राज्यको सदा उज्वल मार्गपर ले जाना पुरोहित संस्थाका मुख्य उद्द श्य था, और प्रभुताकी दृष्टिसे राजाका महत्व था। ऐतरेय ब्राह्मण इस विषयमें लिखते हैं कि* "पुरोहित मानो राजाका आधा शरीर ही है।" इसी ग्रन्थमें एक† स्थानपर आचार्य (पुरोहित) को राष्ट्र-गोप (राज्य रक्षा करनेवाला) लिखा है।

उसने यह भी लिखा है कि राजकाजमें पटु कुशाग्रबुद्धि, और विद्वान् पुरोहित जिस राजाके पास होता है वह राजा अपनी सेनाके द्वारा शत्रुपर अवश्य विजय करता है।

राजाके सम्पूर्ण जिम्मेवार पुरोहित हैं। राजाके बिगड़ने और बनानेका समस्त भार पुरोहितपर ही है। किसी

*अर्धात्मोहवा एषक्षत्रियस्य यत्पुरोहितः। ७-४-८॥

†ऐ०का०८,५,२॥

भी राजाके सुन्दर चाल चलन को देखकर लोग उसके गुरू आचार्य (पुरोहित) की प्रशंसा करते हैं, बिगड़नेपर निन्दा और दोषोंके भागी भी वही है। तांड्य ब्राह्मण (१३,३,१२) में एक कथा लिखी है कि इक्ष्वाकु वंशीय अरूण नामका एक राजा बड़ा उद्दण्ड, और अहंकारी था। एक बार उस राजाकी लापरवाहीसे रथ चलानेमें एक ब्राह्मण कुमारको उसके रथका हलका सा ठोकर लग गया। ब्राह्मण कुमार तत्क्षणात् अरूणके पुरोहित "वृश"के पास आकर बोले, "आपने राजाको उचित शिक्षा नहीं दी है। राजापर आपका प्रभाव नहीं मालूम होता है। आपने अपने गौरवास्पद आचार्य (पुरोहित) पदके कर्त्तव्यको भलीभांति नहीं निभाया है, इसीसे इस राजाके रथका धक्का हमें लगा। वृश उस समय बड़े शर्मिन्दे हुए, और उसकी पूर्ण चिकित्सा अपने देखरेखमें की।

यह आदर्श भारतके सुनहरे युगके थे। वह काल वैदिक धर्मका काल था। उस समयके आचार्य भी सदा राष्ट्रकी उन्नतिमें ही तल्लीन रहा करते थे। आचार्य कोई जन्मसे न होकर गुण कर्मसे ही होता था।

*पीछे आचार्य शब्द भी भारतमें बहुत तरहके प्रयोग में आने लगे। सम्प्रदायके प्रवर्त्तकोंको और धनुष विद्याके अच्छे जानकारोंको भी आचार्य कहा जाता है, जैसे शङ्करा-चार्यका नाम सम्प्रदाय प्रवर्त्तकोंमें और द्रोणाचार्य एवं कृपा-

*आचार्य विषयका प्रमाण इन ग्रन्थोंमें भी देखें ! हेमचन्द्र अ०७८। वोपदेव व्याकरण, २६।१६। त्रिकाण्ड शेष, ३,२,१२॥

चायका नाम धनुष विद्या विशारदोंमें उदाहरणार्थ पाये जाते हैं। वाचस्पतिमिश्रने इसपर एक प्रमाण देकर इस विषयको यों सिद्ध किया है, यथा :--

"आम्नाय तत्व विज्ञानाचराचर समाननः,
यमादि योग सिद्धत्वादाचार्य इति कथ्यते।"

अर्थः—वेदोंके तत्व जाननेके कारण चराचरको समान भाव से देखनेके हेतु, तथा यम नियमादि योग सिद्ध करनेपर, आचार्य उपाधि होती है।

इस समय तो भारतकी कुछ संस्कृत परीक्षा समितियोंने अपनी परीक्षाकी "आचार्य" डिग्री रखकर और भी अपने प्राचीन ग्रन्थोंकी सेवा तथा संगतिका परिचय दिया है। जो हो किन्तु मैं तो सदा जगदीशसे यही कामना करूंगा, कि इस बृद्ध, विशाल, ज्ञान-निधि भारतमें पुनः वही प्राचीन, सुसभ्य, ऐश्वर्यशाली, कर्त्तव्य परायण, समुन्नत, अदीनाभिलाषी, होनेके लिये पूर्ण पुरानी विधियोंके अनुकुल उपनयन, यज्ञोपवीत, एवं राष्ट्रनायक आचार्य प्रादुर्भुत हों। आर्यावर्त्त में सुख, साम्राज्य, और शांतिके सरस, सुन्दर, सर्वप्रिय, प्रवाह प्रवाहित हों। हमारे जङ्गलकी कुटियोंसे त्यागी, यती ब्राह्मणों के प्रातःकालिन ये शब्द फिर कानोंमें आकर गूंजे, यथाः—

"वयं राष्ट्रे जागृयाम पुरोहिताः"

अर्थः – हम पुरोहित राष्ट्रके कामोंमें सदा जागते रहें।

'आब्राह्मण् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायताम्।"

शमित्योश्म्॥

गायत्री मन्त्रके अर्थ

उपनयन संस्कारके साथ साथ गायत्री मन्त्रका एक अविच्छेद सम्बन्ध है। इसकी दीक्षा इसी समय दी जाती है, अतः यज्ञोपवीत पर थोड़ा भी विवेचन उपस्थित होते ही इस मन्त्र पर ध्यान चला जाना स्वाभाविक है। मैं भी इन्हीं कारणोंके वशीभूत होकर यहां गायत्री मन्त्रके अर्थ देनेका लोभ संवरण नहीं कर सका। सबसे अच्छा मैंने यही समझा कि कोई एकाध अर्थको इस ग्रन्थमें न देकर प्रायः सभी महापुरुषों द्वारा जो इस मन्त्रके, अर्थ हो चुके है, उसे ही दे दूं। यह तो ठीक है कि प्रायः सभी अर्थ कर्त्ताओंने मन्त्रके अर्थ संस्कृतमें दिये हैं। पूण ज्ञान, और विशेष स्वाद एवं महापुरुषोंके अर्थ निरूपनकी शैली मूल संस्कृतमें ही पढ़ने योग्य है। मेरा यह ग्रन्थ हिन्दीमें है, अतः उन सभी भाष्यकारोंके कथनका यहां संक्षेपमें केवल सार मात्र है। जिन्हें विशेषतया जानकारी प्राप्त करनी हो वे मूल ग्रन्थोंको देखें! गायत्री मन्त्रः -

ओ३म्ः—"भूर्भुवःस्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गोदेवस्य धीमहि, धियो योनः प्रचोदयात्"॥

इस मन्त्रपर विविध महापुरुषोंके किये अर्थ नीचे हैं, यथा:—

महर्षि याज्ञवल्क्यके भाष्य ।

सभी भूतोंके और संपूर्ण भावोंके उत्पादक सविता देव सांसारिक भयसे त्रसित एवं मोक्षकी इच्छा करने वालोंसे प्रार्थना करने योग्य, प्रकाशक, स्वर्गलोकमें क्रीड़ा करने वाले एवं देवोंसे स्तुत्य, श्रेष्ठ, धर्म, अर्थ काम, और मोक्षमें प्रेरक, चिन्तनीय बुद्धिका विकाश करने वाला, हिरण्य गर्भ, सम्पूर्ण धातुओंमें स्थित, तथा विश्व रूपसे प्रतिष्ठित ब्रह्म हमें मोक्षकी ओर प्रेरित करे। —बृ० यो० या० ॥

भारद्वाज ऋषिके अर्थ ।

उपमा रहित सूर्य मण्डलमें स्थित, प्राणियोंकी उत्पत्ति करनेमें सन्नद्ध, प्रार्थना करने योग्य, पापरहित पुरुषोंसे नियम पूर्वक ध्यान करने-योग्य, वृष्टिदानादि गुणयुक्त, प्रकाशित, आदि जगदीशका सदा चिन्तन करूं। वह तेज हम लोगोंकी बुद्धिको उत्तम कर्मोंके करनेमें प्रेरणा करे। —भारद्वाज स्मृ०

अगस्त ऋषि भाष्य ।

जो सविता देव हमारी बुद्धियोंको धर्मादिमें लगाते है, उस सविता देवका जो प्रार्थनीय भर्गरूष तेज है, उसकी हम उपासना करते हैं।* अग० स्मृ०।

---

*योदेवः सविता ऽस्माकं, धियोधर्मादि गोचराः। प्रेरयेत्तस्पयद्भर्गस्तं वरेण्यमुपास्महे ॥

पाराशरके अर्थ ।

सवितादेवका जो भर्गरूप तेजवरणीय हैं, उसका हम ध्यान करते हैं । वह बुद्धिको ब्रह्मरूपमें प्रेरणा करे ।* — वृ०पा० स्मृ ।

स्कन्द कृत अर्थ ।

हे सुव्रत द्विज लोगो ! अन्तर्यामी रूप हम सबके चित्तोंको जो प्रेरित करता है, उस प्रकाशमान, सब जन्तुओंमें प्रत्यक्षरूप से स्थित, सविता रूप परमेश्वरके स्वरूप, सम्पूर्ण जन्तुओं द्वारा, भजनीय, तेजस्वी, चैतन्यरूप, सर्वज्ञ, संसारका उत्पादक है ।

—स्का० सूत० सं०

आग्नेय निर्वाण तन्त्र कृत अर्थ ।

तीन अक्षरोंसे प्रणव रूप प्रतिपादित परमात्मा, उत्पत्ति, पालन, और नाश करने वाला वह विश्वमय ब्रह्म, जगतरूप है, सृष्टिकर्त्ता है, विभु है, और सविता (प्रकाश) करता है। अन्तर्गत जो महान् तेज है, वह इन्द्रियजित् पुरुषोंसे वरणीय है । उसी परम सत्य, सर्वव्यापी, सनातन, ब्रह्मका ध्यान करना चाहिये, एवं सर्वसृष्टिका साक्षी वह भर्ग, हमारे मन बुद्धि तथा इन्द्रियोंको धर्म, अर्थ, काम, और मोक्षमें युक्त करे ।

—आ० नि० तन्त्र ।

रावण भाष्य ।

जो सूर्य कर्मोंको प्रेरित करते हैं, उस सविता (सर्वोत्पादक) देव (प्रकाशमान) सूर्यके वह सर्वजनोंसे उपासना करने योग्य,

---

*देवस्य सवितुर्भर्गो वरणीयश्चधीमहि, तदास्माकंधियो यस्तु ब्रह्मत्वेच प्रचोदयात् ॥

पापोंको नाश करने वाले, तेज मण्डलको हम ध्येय रूपसे तथा मनसे धारण करते हैं।

उव्वट कृत अर्थ।

उस सवितादेवके वरणीय वीर्य या तेजका हम ध्यान करते हैं। जो भर्ग हमारी बुद्धिको प्रेरित करता है उसकी हम चिंता करते हैं। वह भर्ग सविता ही है, उस सवितादेवके वरणीय भर्गका हम ध्यान करते हैं। वह सदा हमारी बुद्धिको (शुभ काममें) प्रेरित करता है।

सायण-भाष्य।

सब श्रुतियोंमें प्रसिद्ध प्रकाशमान्. सर्वान्तर्यामी, रूपसे प्रेरक, जगतकी रचना करने वाला, सवितारूप, परमेश्वरका, आत्मरूप सबोंसे उपासनीय, जानने और भजन करने योग्य उस भर्गको, जो मैं हूं वही वह है, और जो वह है वही मैं हूं, ऐसा समझ कर हम ध्यान करते हैं।

महीधर-भाष्य।

उस प्रकाशमान, प्रेरक अन्तर्यामी विज्ञानानन्द स्वरूप, हिरण्य गर्भोपाधिमें स्थित तथा सूर्य मण्डलमें स्थित वरणीय ब्रह्मका और संसारके समस्त पापोंके नाश करनेमें समर्थ उस सत्य ज्ञानानन्दस्वरूपका हम ध्यान करते हैं।

श्रीमत् शङ्कर भाष्य।

(ब्रह्म और जीवात्माके एकत्व बोधक)

जो हमारी बुद्धिकी प्रेरणा करता है, जो सबके अन्तःकरणका प्रकाशक सबोंका साक्षी प्रत्यगात्मा कहा जाता है, वह

आत्माका स्वरूप परब्रह्म है। सब भूतोंमें स्थित वह तत् सत्, ब्रह्म, उत्पन्न, पालन, प्रलय लक्षणवाला सब प्रपञ्च और सब द्वैत भ्रम अधिष्ठान है। सबसे प्रार्थनीय, और परमानन्द रूप "वरेण्य" है। अज्ञानादि दोषोंका नाशक ज्ञान रूप "भर्ग" है। सबका प्रकाश रूप अखण्ड, चैतन्य, एक रस, "देव" है। बुद्धि आदिके द्वारा सर्व दृश्य पदार्थोंका साक्षी रूप जो मेरा शरीर है, उस सर्व-अधिष्ठान, परमानन्द, सर्व अनर्थ रहित, स्वयं प्रकाश; और चैतन्य रूप ब्रह्मका हम ध्यान करते हैं।

महर्षि दयानन्दका अर्थ।

उस सब जगतकी उत्पत्ति करनेवाले सूर्यादि प्रकाशकोंके भी प्रकाशक, समग्र ऐश्वर्यके दाता, कामना करने योग्य, सर्वत्र विजय करानेवाले, परमात्माका, जो अति श्रेष्ठ, ग्रहण और ध्यान करने योग्य, सब क्लेशोंको भस्म करने हारा, पवित्र शुद्ध स्वरूप है, उसको हम लोग धारण करें, यह जो परमात्मा हमारी बुद्धियोंको, उत्तम, गुण, कर्म, स्वभावोंमें प्रेरणा करे।

विद्यारण्य स्वामि-कृत अर्थ।

वाणी और मनसे अगोचर जो सूर्यमण्डलमें ध्यान करने योग्य है, सकल लोकोंकी उत्पत्ति, पालन, और संहारका कारण है; सबके आश्रय लेने योग्य जो इस जगत्का आधार है। अपने स्वरूपको साक्षात् करनेसे अविद्या और उसके कार्यका नाशक है। प्रकाश मान वा आनन्द रूपसे क्रीड़ानेवाला

है, हम निश्चय करके वही ब्रह्म हैं इस अभेद सिद्धिकेलिये, अन्तः-करणकी वृत्ति अर्थात् प्रत्यगात्मा (जीवात्मा) के सन्मुख चलनेवाली (बुद्धि) जो सत्य ज्ञान और आनन्द रूप है, वह हमारी बहुत प्रकारके अभ्यासोंसे भिन्न भिन्न भेद देखनेवालों को प्रेरणा करें।

भट्टोजि दीक्षित कृत अर्थ।

सबको प्रेरणा करनेवाला सविता, अर्थात् सूर्य मण्डलमें व्यापक तेज, जो सबको प्रकाशित करता है। उस देव (परमात्मा) का सभी तरहसे चिन्तन योग्य तेज है। अज्ञान काम कर्मादिका नाशक जो आत्मस्वरूप ज्योति (भर्ग) है, उसका मैं ध्यान करता हूं, अर्थात् वह परमात्मा मैं हूं, या उस परमात्मा के अधीन हूं, ऐसा जो देव हमारी बुद्धिको प्रेरित करता हैं उसका ध्यान करता हूं।

वरदराज भाष्य।

हे सूर्य ! आप सृष्टिके एक उत्पन्न करनेवाले हो। सब प्राणियोंके चिन्तन योग्य हो। जगतके बाहर और भीतर प्रकाश करनेसे अन्धकारके नाशक हो। सब जगतके संहार करनेसे आपका नाम भर्ग है। मैं उस प्रकाशमान्का चिंतन करता हूं जो प्रत्यक्ष इस सूर्य मण्डलके भीतर हिरण्मय पुरुष हैं, वह सविता हमारे त्याग ग्रहण-विषयक ज्ञानकी प्रेरणा करता है।

॥*॥इति॥*॥

उपसंहार

यज्ञोपवीत विषयक एकाध फुटकर क्षुद्र विचार सर्व-साधारण समाजमें कभी कभी उपस्थित हो जाया करता हैं। मैं उनका थोड़ा २ समाधान यहां संकेत रूपसे दे दूंगा। बुद्धिमान् वाचक समय और परिस्थितिके अनुकूल उसे यथा आवश्यक अपने कामके अनुकुल बना लेंगे। यद्यपि यह विषय इस ग्रन्थका नहीं था, और हमें इन विषयोंके विवेचनकी इच्छा भी न थी, किन्तु मित्रोंके अनुरोधकी रक्षा करना कर्त्तव्य है।

कानपर यज्ञोपवीत-धारण।

यह कार्य मलमूत्र त्यागके समय किये जाते हैं। इसका उद्देश्य है, इस समय कानके नसोंको दबाना। इस दबावका खास सम्बन्ध मूत्र नली (Bladder) से है। कानके उपरवाले नसको (Car of Vein) मूत्र त्याग करनेके समय ठीकसे दबानेसे अन्त्र वृद्धि (Hydrocele) और अन्त्र प्रदाह (Orchitis) एक शिराकी बीमारी नहीं होनेकी सम्भावना*

* भाव प्रकाशमें लिखा हैं—"धारणम् उपस्थितस्य वेगस्य इरणमनुपस्थितस्य वेगस्य प्रेरणम्।" भा०प्र०म०ख० २,अ०वृ०

है। यह प्रत्यक्षतया देखा भी जाता है, कि एकशिरा जिसकी वृद्धि होती है, उसे प्रायः भारतीय चिकित्सा शास्त्रज्ञ बढ़नेवाले अंशकी ओरवाले कानको छेदनेका परामर्श देते हैं। बहुत बार ऐसा देखा गया है कि जब किसी पैरमें झूनझूनी (Little bells wornon the feet) हो, तो उसी ओरके कानपर एक तृणका हल्का टुकड़ा रख देनेसे झूनझूनी आराम हो जाती है।

दूसरी बातें प्रधानतः समझमें यह आती है कि जङ्गल और समतल भूमिपर मल मूत्रादि त्यागके समय जनेऊ भूमिमें लटक पड़ती है, और उस समय सूत्रादिके छीटें जनेऊमें पड जाते हैं, अतएव उस समयकी गन्दी छीटोंसे यज्ञोपवीतको बचानेके ख्यालसे कानपर यज्ञोपवीत बांध लेना आवश्यक है।

दंड-धारण।

दण्ड-धारण ब्रह्मचारियोंके लिये जंगलमें बड़े काम आनेवाली चीज है। जिन लोगोंने कभी जंगलमें भ्रमण किया है, उन्हें इसकी आवश्यकता नहीं बतानी होगी, जंगल में जब किसी कांटोंकी झारें (बल्लरी) छोटी पगदंडीको ढके रहती है, उस समय इसी दंडसे ब्रह्मचारी उसे हटाकर चलनेमें समर्थ होताहै। यह दंड पहाड़ी चढ़ावपर चढ़नेमें भी पूर्ण सहायक:हैं। इसीसे दंडको किसी किसी स्थानपर भाई कहा गया है। सामान्य हिंसक जंतुओंके लिये भी यह भयकारक है इसे सर्वदा हाथमें रखनेसे शरीर भी सुडोल रहता है।

प्रत्येक वर्णोंके लिये भिन्न भिन्न क्यों ?

इस विषयमें मनुस्मृतिके नन्दन टीका कार ने लिखा है, कि जिस कारणकी विशेषताको पूर्ण करनेवाला सूर्य है, उसी कारणसे विल्वका भी उद्भव है, अतः यह विल्व भी जन्मसे ही ब्रह्मवर्चसका प्रभाव(असर) रखता हैं। इसमें सात्विक गुणप्रधान होनेसे यह काठ भी ब्राह्मण वर्णका है, और ब्राह्मण बालक इसीको धारण करे।" दूसरा पलाशके लिये भी ऐसाही ऐतरेय ब्राह्मणादि ग्रन्थोंमें लिखा हैं, अतएव ब्राह्मण पलाशके भी दंडको रख सकते* हैं। ऐतरेय ब्राह्मणने लिखा है, कि बट वृक्ष वनस्पतियोंमें क्षत्रिय वर्णका है, अतएव क्षत्रिय बालक इसीका ग्रहण करें। अथवा खैरका यह भी इसी गुणका है। वायु देवताओंमें वैश्य है, और पीपल, वृक्ष वायु प्रधान होनेके कारण, वैश्योंको इसीका दंड धारण करना चाहिये।

आयुर्वेदानुकूल भी इन काष्ठोंके गुण ऊपरके प्रमाणोंको पुष्ट करते हैं:—पलाश (ढाक) के छार, श्रेष्ठ, बात हर, ब्रह्म वृक्ष आदि नाम हैं। अंग्रेजीमें इसे Downy, brarnch bula कहते हैं। गुणः—अग्निको दीपन करने वाला, वीर्यवर्द्धक,

---

*क्षत्रं वै राजन्य इति। यदैव वैल्वां विल्वं ज्योति। तेजोवै ब्रह्म वर्चसं वनस्पीतनां पलाशः। खादिरेण वै यूपेन देवाः स्वर्ग लकमजयंस्त। ऐ०ब्रा०सं१,६अ०।

दस्तावर, गरम, कसैला, चरपरा, स्निग्ध, कड़वा, व्रण, गुल्म, गुदा रोग, दोष, संग्रहणी और बवासीरका नाशक है।

बेल=अंग्रेजीमें Bengal kins, गुण:—अग्निदीपक, पाचक, चरपरा, कसेला, गरम, हलका, स्निग्ध, कड़वा, बात तथा कफ का नाशक है।

वट=अंग्रेजीमें Banyantree, गुण:—शीतल, भारी, ग्राही, वर्णको उत्तम करने वाला, कसेला, कफ, पित्त, व्रण, विसर्प दाह, तथा योनि दोषोंको दूर करने वाला है।

पीपल, अंग्रेजीमें Poplarleaved Fig tree, गुण:—दुर्जर, शीतल, भारी कषैला, रूखा, वर्णको उत्तम करने वाला, योनिको शुद्ध करने वाला, पित्त, कफ, व्रण तथा रक्त विकार का नाश करने वाला है।

खैर,=अंग्रेजी में catechu, गुण :—शीतल, दांतों का हितकर, कड़वा, कसेला, खुजली, खांसी, अरुचि, मद-कृमि, प्रमेह ज्वर, व्रण, चित्रित कोढ़, सूजन, आम पित्त, रूधिर विकार, पाण्डुरोग, कोढ़ तथा कफको नष्ट करता है।

इतना ही प्रकाश इस बातके लिये काफी है कि दण्ड धारण भी बहुत सोच समझ कर, और बालकोंकी उन्नतिके लिये बहुत बड़े महत्व पर निर्णय किया गया है। इसका उपयोग सदा नि:शङ्क होकर करना चाहिये। यज्ञोपवीत विधि ही वास्तवमें संसारके मनुष्य समाजको सुदृढ़, बलिष्ठ और शृङ्खलित, ज्ञान एवं कर्ममय जीवनका मूल आधार, राष्ट्र रचना,

और उसकी रक्षा, वर्णवादके साथ साथ साम्यवाद, और आयु के साधनका प्रशस्त, सरल, मनोहर, उन्नत, तथा उज्वल मार्ग प्रदर्शक है। इसी विधिने कभी भारतवर्षको चक्रवर्ती शासन के योग्य बना कर संसारमें सर्वत्र और पाताल तक आर्य संस्कृतिकी सर्वोत्तम सभ्यतासे निखिल विश्वको प्लावित कर कोने कोनेसे उठने वाली "वैदिक धर्मकी जय, भारत वसुन्धरा की जय" की बुलन्द आवाजोंसे विस्तृत गगनको पूर्ण किया था।

भारतीय लाड़ले! लौटो वेदकी ओर तथा पुरानी अपनी सुसभ्य विधियोंकी ओर, यही तुम्हें सच्ची शांति, सुख, स्वराज्य, वैभव, और आदर्श देगा।

जगदीश हमें सुबुद्धि और रुचि दे।

भागलपुर मण्डलान्तर्गत, छत्रहार निवासी, भारद्वाज गोत्रोद्भव स्वर्गीय पं० प्राणनाथ मिश्रस्यात्मजो मिश्रोपाह्व [illegible] लिखिता समाप्ताचेयं यज्ञोपवीत मीमांसा।

सूचना ।

हमने गम्भीर, सुन्दर, सस्ता, धार्मिक, सामाजिक, राष्ट्रीय और वेदके भिन्न-भिन्न विषयोंपर तत्वप्रद मीमांसाओंके ग्रन्थोंको प्रकाश कर वितरण करनेका निश्चय किया है। यहांपर उचित मूल्यमें दूसरोंके यहांके छपे ग्रन्थ भी मिलेंगे। उचित कमीशन एजेण्टोंको मिलेंगे। ग्रन्थोंके दामोंमें सस्तेपनका पूरा-पूरा ध्यान रक्खा जाता है। विशेष विवरण पत्र व्यवहारसे जानें।

Address ;-
Vedic Sahitya Pustakalya
23, Orphanganj Road,
Kidderpore, Calcutta.
PHONE NO: SOUTH 702

पता :—
व्यवस्थापक,
वैदिक साहित्य पुस्तकालय,
२३, अर्फनगंज रोड,
खिदिरपुर, कलकत्ता
फोन नं० साउथ ७०२